શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પ્રણીત
દૃષ્ટાંત કથાઓ
ભાવનાબોધ-મોક્ષમાળામાંથી

प्रथमावृत्ति का निवेदन

इस छोटी पुस्तिका में श्रीमद् राजचंद्र प्रणीत भावनाबोध में आई हुई बारह भावनाओका संपूर्ण संग्रह किया गया है। यह भावनाएं वैराग्यकी जननी है। भव, तन और भोगोका वास्तविक स्वरूप बतानेवाली है। अत: आत्मा के लिये अत्यंत उपयोगी है।

सबसे पहले वैराग्य उपशम की जीवमें बहुत जरूरत है। इसके बिना सच्चा अंतरत्याग नहीं हो सकता। अंदर से आसक्ति नहीं घटने पर आत्मज्ञान की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। श्रीमद् राजचंद्र लिखते है कि –

'त्याग विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान'

आत्मज्ञान के बिना सब क्लेश और दु:ख से जीव मुक्त नहीं हो पायेगा। इसलिए बारह भावनाओंका बार बार चिंतन करनेकी आज्ञा महापुरुषो ने दी है। बारह भावनाओं का भाव आसानीसे समजमें आने के लिए यहाँ पर दृष्टांतो के अनुरूप रंगीन चित्र बनाकर रक्खें गये है।

उसी प्रकार 'मोक्षमाला' ग्रंथमें आई हुई दृष्टांतकथाओ के भी रंगीन चित्र बनाकर उनको भी यहाँ पर शामिल किया गया है। सर्व मुमुक्षुओको यह वैराग्यप्रेरक छोटी पुस्तिका संसारके प्रति विरक्तभाव लानेमें सहायभूत हो ऐसी हार्दिक शुभेच्छा।

–आत्मार्थ इच्छक,
पारसभाई जैन, अगास आश्रम

अनुक्रमणिका

भावनाबोधमेंसे–	पृष्ठ	मोक्षमालामेंसे –	पृष्ठ
अनित्यभावना (भिखारीका खेद)	१	बाहुबळ	३६
अशरणभावना (अनाथी मुनि)	४	कामदेव श्रावक	३८
अेकत्वभावना (नमिराजर्षि)	८	सत्य (वसुराजा)	४०
अन्यत्वभावना (चक्रवर्ती भरतेश्वर)	१४	परिग्रहको संकोचना (सुभुम चक्रवर्ती)	४२
अशुचिभावना (सनत्कुमार)	१९	सर्व जीवकी रक्षा भाग-१	४४
निवृत्तिबोध (मृगापुत्र)	२२	सर्व जीवकी रक्षा भाग-२ (अभयकुमार)	४६
आस्रवभावना (कुंडरिक)	२९		
संवरभावना (पुंडरिक, वज्रस्वामी)	३०	विनयसे तत्त्व की सिद्धि है (श्रेणिक राजा)	४८
निर्जराभावना (दृढ प्रहारी)	३३	सुदर्शन शेठ	५०
लोकस्वरूपभावना	३४	अनुपम क्षमा (गजसुकुमार)	५२
बोधदुर्लभभावना	३६	कपिलमुनि भाग-१-२-३	५४
धर्मदुर्लभभावना	३६	मोक्षसुख (एक भद्रिक भील)	५८

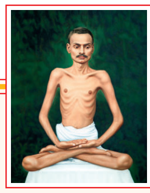

चर्मरत्नका क्या हुआ ? सुभुम मरकर के कौनसी गतिमें गया ?

अभयकुमार (पृष्ठ ४६)

१. श्रेणिकके दरबारमें मंत्रीयोने क्या कहा ? २. अभयकुमार मंत्रीयोके घर पर क्यों गया ? ३. मंत्रीयोने हृदयका मांस न देकर क्या दिया ? ४. श्रेणिकराजा सिंहासन पर बैठे तब मंत्रीयोने आकर क्या पूछा ? ५. राजाको आश्चर्य क्यों हुआ ? ६. अभयकुमारने उठकर क्या कहा ? ७. मंत्रीयोको शरम आनेसे अभयकुमारने क्या कहा ? ८. अभयकुमारके वचनोसे मंत्रीयोने क्या त्याग किया ?

श्रेणिकराजा (पृष्ठ ४८)

१. चंडालने आम्रवृक्षको कैसे नीचे झुकाया ? २. चंडालने अपराधको क्षमा करनेका कहने पर अभयकुमारने क्या कहा ? ३. श्रेणिक राजाको विद्या सीखनेके लिये क्या करना पडा ?

सुदर्शन सेठ (पृष्ठ ५०)

१. अभया राणी और कपिला दासीने राजाको सुदर्शनके बारेमें क्या कहा ? २. राजको क्रोध आने पर सुदर्शनको क्या शिक्षा की ? ३. शूलीका क्या बन गया ?

गजसुकुमार (पृष्ठ ५२)

१. सोमल ब्राह्मणने गजसुकुमारके सिर पर क्या भरा ? २. गजसुकुमार उस वक्त क्या विचार करते है ? ३. गजसुकुमार इस शरीरका त्याग करके कहाँ गये ?

कपिल मुनि (पृष्ठ ५४)

१. कपिल विद्याभ्यासके लिये कहाँ गये ? २. कपिल विद्याभ्यास क्यों न कर सका ? ३. विद्याभ्यास करते करते कहाँ फंस गया ? ४. दो मासा सोना लेनेके लिये कहाँ पर जाता था ? ५. सोना लेने जाने पर किसने पकडा ? ६. राजाने उसको बगीचेमें किसलिये भेजा ? ७. बगीचेमें विचार करने पर उसने क्या लेनेका विचार किया ? ८. विचार बदलने पर उसे क्या प्राप्त हुआ ? ९. कपिलने राजाके पास आकर क्या कहा ?

भद्रिक भील (पृष्ठ ५८)

१. राजाने भीलको अपने साथ क्यों लिया ? २. राजाने अपने नगरमें लानेके बाद उसको कहांपे रक्खा ? और राजा प्रतिदिन उसे क्या दिखलाते थे ? ३. एक दिन रातको वह कहाँ चला गया ? ४. उसके कुटुंबी उसे क्या पूछते है ? ५. भील, उनके कुटुंबीओको क्यों जवाब नहीं दे सकता है ?

– पारसभाई जैन, अगास आश्रम

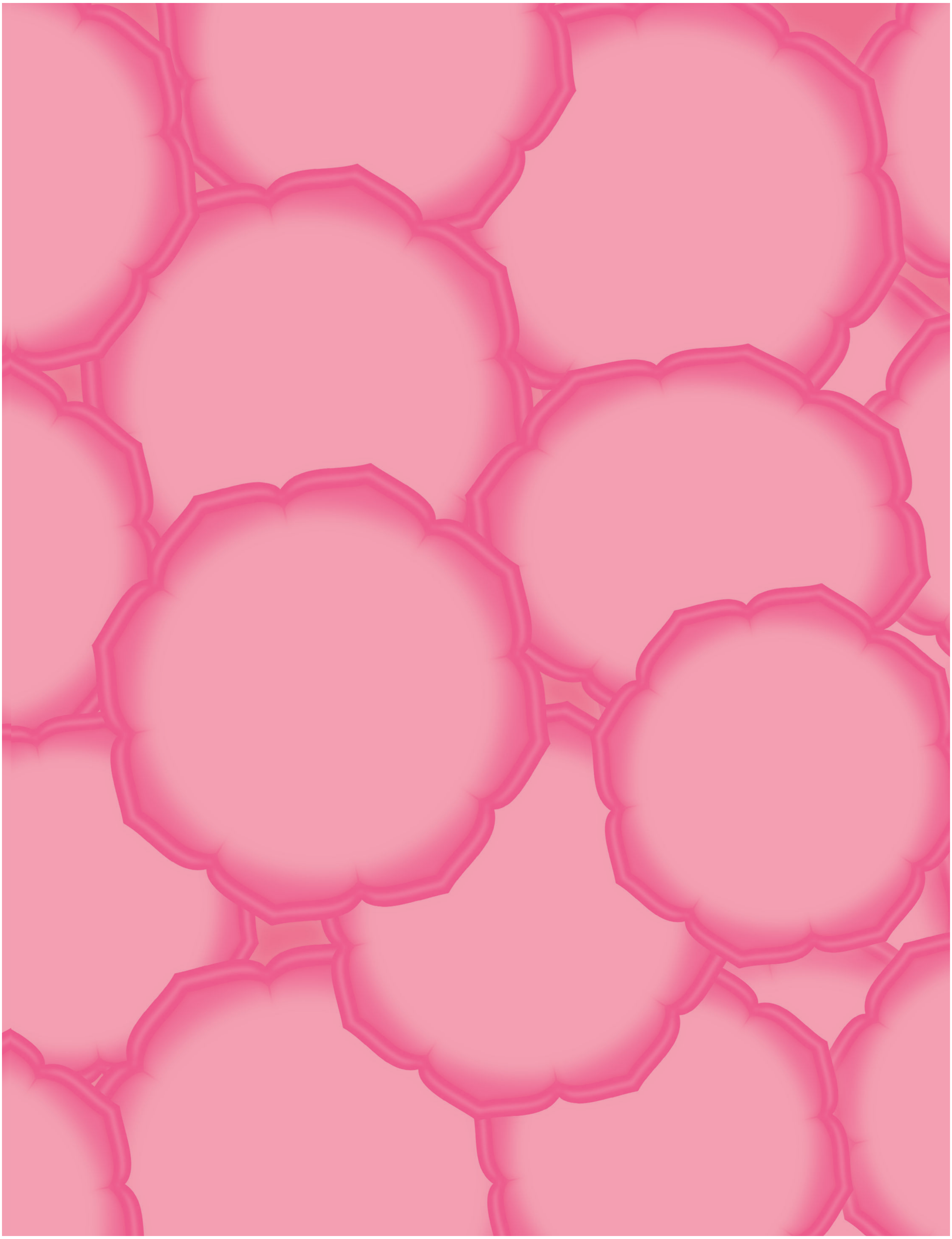

श्रीमद् राजचंद्र प्रणीत

(भावनाबोध-मोक्षमालामेंसे)

दृष्टांत कथा

(सचित्र)

हिन्दी अनुवादक
श्री हंसराज जैन

संयोजक
पारसभाई जैन

प्रकाशक
श्रीमद् राजचंद्र जन्म भवन, ववाणिया

ग्रंथ प्रकाशनमें भाग लेनेवाले दाताओकी यादी

"लोभ छोडने के लिए दान करना है । देवलोककी इच्छा बिना दान करना ।"

-बोधामृत भाग-१ (पृ.१४८)

२५,०००/-	श्री पारसभाई एम. जैन तथा भावनाबेन पी. जैन	अगास आश्रम
२५,०००/-	श्री संतोकचंदजी हस्तीमलजी तथा पुत्र माणेकभाई, कांतिभाई, नवरतनभाई तथा परिवार	गढ़ सिवाना
२१,०००/-	श्री हंसाबेन नवीनचंद्र तथा पुत्र दीपककुमार, नीलकुमार तथा पुत्री हेमाकुमारी	लंडन
२१,०००/-	भक्ति ग्रुप-जैन सोसायटी ऑफ टोरेन्टो	केनेडा
१५,०००/-	श्री उदयनकुमार विनोदभाई हस्ते कमुबेन शनाभाई मास्तर	अगास आश्रम
१५,०००/-	एक मुमुक्षुबेन	अगास आश्रम
११,०००/-	श्री सागर आर. पटेल	अमेरीका
१०,०००/-	श्री हर्ष एन. पटेल	अमेरीका
१०,०००/-	श्री सरिताबेन वीरजी हस्ते सुस्मिताबेन	केनीया
१०,०००/-	श्री नथमलजी रायचंदजी चौधरी	तेनाली
१०,०००/-	श्री बाबुलालजी रीखबचंदजी तथा पुत्र विकासकुमार, विवेककुमार, विजयकुमार	दावणगिरी
१०,०००/-	श्री सूरजबेन शांतिलालजी तथा पुत्र राजेशकुमार	बेंग्लोर

प्राप्तिस्थान

श्रीमद् राजचंद्र ज्ञानमंदिर श्रीमद् राजचंद्र मार्ग आर.बी.मेता रोड, घाटकोपर (इस्ट) मुंबई–४०० ०७७	प्रकाशक: श्री भरतभाई भ. मोदी श्रीमद् राजचंद्र जन्मभुवन ववाणिया-३६३ ६६० तालुका-माळीया मिंयाणा, जिल्लो-राजकोट	श्रीमद् राजचंद्र ज्ञानमंदिर आकाशवाणी रोड, राजकोट (गुजरात) पीनकोड ३६० ००१

प्रथमावृत्ति, प्रत २०००, इस्वी सन् २०११

मूल्य रू. ५/-

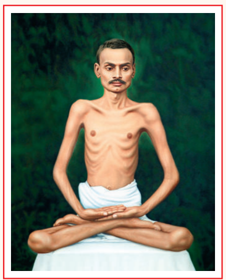

भावनाबोध - बारह भावना

प्रथम चित्र

अनित्यभावना

(उपजाति)

विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग,
आयुष्य ते तो जळना तरंग;
पुरंदरी चाप अनंग रंग,
शुं राचीए त्यां क्षणनो प्रसंग !

विशेषार्थ—लक्ष्मी बिजलीके समान है। जैसे बिजलीका चमकारा होकर विलीन हो जाता है, वैसे लक्ष्मी आकर चली जाती है। अधिकार पतंगके रंगके समान है। पतंगका रंग जैसे चार दिनकी चाँदनी है, वैसे अधिकार मात्र थोडा समय रहकर हाथसे चला जाता है। आयुष्य पानीकी हिलोरके समान है। जैसे पानीकी हिलोर आयी कि गयी वैसे जन्म पाया और एक देहमें रहा या न रहा, इतनेमें दूसरी देहमें जाना पडता है। कामभोग आकाशमें उत्पन्न होनेवाले इंद्रधनुषके सदृश है। जैसे इन्द्रधनुष वर्षाकालमें उत्पन्न होकर क्षणभरमें विलीन हो जाता है, वैसे यौवनमें कामविकार फलीभूत होकर जरावस्थामें चले जाते हैं। संक्षेपमें हे जीव ! इन सभी वस्तुओंका सम्बन्ध क्षणभरका है, इनमें प्रेमबंधनकी साँकलसे बँधकर क्या प्रसन्न होना ? तात्पर्य कि ये सब चपल एवं विनाशी हैं, तू अखंड एवं अविनाशी है, इसलिए अपने जैसी नित्य वस्तुको प्राप्त कर !

भिखारीका खेद

दृष्टांत—इस अनित्य और स्वप्नवत् सुखके विषयमें एक दृष्टांत कहते हैं—

एक पामर भिखारी जंगलमें भटकता था। वहाँ उसे भूख लगी। इसलिए वह बिचारा लडखडाता हुआ एक नगरमें एक सामान्य मनुष्यके घर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने अनेक प्रकारकी आजिजी की। उसकी गिडगिडाहटसे करुणार्द्र होकर उस गृहपतिकी स्त्रीने घरमेंसे जीमनेसे बचा हुआ मिष्टान्न लाकर उसे दिया। ऐसा भोजन मिलनेसे भिखारी बहुत आनन्दित

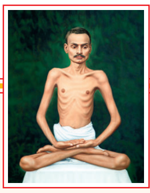

होता हुआ नगरके बाहर आया। आकर एक वृक्षके नीचे बैठा। वहाँ जरा सफाई करके उसने एक ओर अपना बहुत पुराना पानीका घडा रख दिया, एक ओर अपनी फटी पुरानी मलिन गुदडी रखी और फिर एक ओर वह स्वयं उस भोजनको लेकर बैठा। खुशी-खुशीसे उसने कभी न देखे हुए भोजनको खाकर पूरा किया। भोजनको स्वधाम पहुँचानेके बाद सिरहाने एक पत्थर रखकर वह सो गया। भोजनके मदसे जरासी देरमें उसकी आँखें मिच गयीं। वह निद्रावश हुआ कि इतनेमें उसे एक स्वप्न आया। मानो वह स्वयं महा राज-ऋद्धिको प्राप्त हुआ है, इसलिए उसने सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये हैं, सारे देशमें उसकी विजयका डंका बज गया है, समीपमें उसकी आज्ञाका पालन करनेके लिए अनुचर खडे हैं, आसपास छडीदार "खमा! खमा!" पुकार रहे हैं, एक उत्तम महालयमें सुन्दर पलंगपर उसने शयन किया है, देवांगना जैसी स्त्रियाँ उसकी पाँव-चप्पी कर रही हैं, एक ओरसे मनुष्य पंखेसे सुगन्धी पवन कर रहे हैं, इस प्रकार उसने अपूर्व सुखकी प्राप्तिवाला स्वप्न देखा। स्वप्नावस्थामें उसके रोमांच उल्लसित हो गये। वह मानो स्वयं सचमुच वैसा सुख भोग रहा है ऐसा वह मानने लगा। इतनेमें सूर्यदेव बादलोंसे ढँक गया, बिजली कौंधने लगी, मेघमहाराज चढ आये, सर्वत्र अँधेरा छा गया, मूसलधार वर्षा होगी ऐसा दृश्य हो गया, और घनगर्जनाके साथ बिजलीका एक प्रबल कडाका हुआ। कडाकेकी प्रबल आवाजसे भयभीत हो वह पामर भिखारी शीघ्र जाग उठा। जागकर देखता है तो न है वह देश कि न है वह नगरी, न है वह महालय कि न है वह पलंग, न हैं वे चामरछत्रधारी कि न हैं वे छडीदार, न है वह स्त्रीवृन्द कि न हैं वे वस्त्रालंकार, न हैं वे पंखे कि न है वह पवन, न हैं वे अनुचर कि न है वह आज्ञा, न है वह सुखविलास कि न है वह मदोन्मत्तता। देखता है तो जिस जगह पानीका पुराना घडा पडा था उसी जगह वह पडा है, जिस जगह फटी-पुरानी गुदडी पडी थी उसी जगह वह फटी-पुरानी गुदडी पडी है। महाशय तो जैसे थे वैसेके वैसे दिखायी दिये। स्वयं जैसे मलिन और अनेक जाली-झरोखेवाले वस्त्र पहन रखे थे वैसेके वैसे वही वस्त्र शरीरपर विराजते हैं। न तिलभर घटा कि न रत्तीभर बढा। यह सब देखकर वह अति शोकको प्राप्त हुआ। 'जिस सुखाडंबरसे मैंने आनन्द माना, उस सुखमेंसे तो यहाँ कुछ भी नहीं है। अरे रे! मैंने स्वप्नके भोग तो भोगे नहीं और मुझे मिथ्या खेद प्राप्त हुआ।' इस प्रकार वह बिचारा भिखारी ग्लानिमें आ पडा।

प्रमाणशिक्षा—स्वप्नमें जैसे उस भिखारीने सुखसमुदायको देखा, भोगा और आनन्द माना, वैसे पामर प्राणी संसारके स्वप्नवत् सुखसमुदायको महानन्दरूप मान बैठे हैं। जैसे वह सुखसमुदाय जागृतिमें उस भिखारीको मिथ्या प्रतीत हुआ, वैसे तत्त्वज्ञानरूपी जागृतिसे संसारके सुख मिथ्या प्रतीत होते हैं। स्वप्नके भोग न भोगे जानेपर भी जैसे उस भिखारीको शोककी प्राप्ति हुई, वैसे पामर भव्य जीव संसारमें सुख मान बैठते हैं, और भोगे हुएके तुल्य मानते हैं, परन्तु उस भिखारीकी भाँति परिणाममें खेद, पश्चात्ताप और अधोगतिको प्राप्त होते हैं। जैसे स्वप्नकी एक भी वस्तुका सत्यत्व नहीं हैं, वैसे संसारकी एक भी वस्तुका सत्यत्व नहीं है। दोनों चपल और

भिखारीका खेद

१
भिखारीको शेठाणी झूठा खाना दे रही है
२
भिखारी आनंदसे मिष्टान्न खा रहा है
भिखारीका राजवैभव सपनेमें
३
भिखारी स्वप्नमें राजसुख भोगता है
४
बीजलीके कड़ाकेसे जागने पर खेद

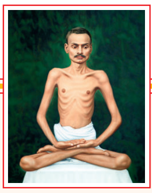

शोकमय हैं। ऐसा विचार करके बुद्धिमान पुरुष आत्मश्रेयको खोजते हैं।

इति श्री 'भावनाबोध' ग्रन्थके प्रथम दर्शनका प्रथम चित्र 'अनित्यभावना' इस विषयपर सदृष्टान्त वैराग्योपदेशार्थ समाप्त हुआ।

द्वितीय चित्र

अशरणभावना

(उपजाति)

सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी,
आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।
अनाथ एकांत सनाथ थाशे,
एना विना कोई न बांह्य स्हाशे ॥

विशेषार्थ—सर्वज्ञ जिनेश्वरदेवके द्वारा निःस्पृहतासे उपदिष्ट धर्मको उत्तम शरणरूप जानकर, मन, वचन और कायाके प्रभावसे हे चेतन! उसका तू आराधन कर, आराधन कर। तू केवल अनाथरूप है सो सनाथ होगा। इसके बिना भवाटवीभ्रमणमें तेरी बाँह पकडनेवाला कोई नहीं है।

जो आत्मा संसारके मायिक सुखको या अवदर्शनको शरणरूप मानते हैं, वे अधोगतिको प्राप्त करते हैं, तथा सदैव अनाथ रहते हैं, ऐसा बोध करनेवाले भगवान अनाथी मुनिका चरित्र प्रारम्भ करते हैं, इससे अशरणभावना सुदृढ होगी।

अनाथी मुनि

दृष्टान्त—अनेक प्रकारकी लीलाओंसे युक्त मगध देशका श्रेणिक राजा अश्वक्रीडाके लिए मंडिकुक्ष नामके वनमें निकल पडा। वनकी विचित्रता मनोहारिणी थी। नाना प्रकारके तरुकुञ्ज वहाँ नजर आ रहे थे, नाना प्रकारकी कोमल वल्लिकाएँ घटाटोप छायी हुई थीं; नाना प्रकारके पक्षी आनन्दसे उनका सेवन कर रहे थे; नाना प्रकारके पक्षियोंके मधुर गान वहाँ सुनायी दे रहे थे; नाना प्रकारके फूलोंसे वह वन छाया हुआ था; नाना प्रकारके जलके झरने वहाँ बह रहे थे; संक्षेपमें सृष्टिसौंदर्यका प्रदर्शनरूप होकर वह वन नंदनवनकी तुल्यता धारण कर रहा था। वहाँ एक तरुके नीचे महान समाधिमान पर सुकुमार एवं सुखोचित मुनिको उस श्रेणिकने बैठे हुए देखा। उनका रूप देखकर वह राजा अत्यन्त आनन्दित हुआ। उस अतुल्य उपमारहित रूपसे विस्मित होकर मनमें उनकी प्रशंसा करने लगा—"अहो! इस मुनिका कैसा अद्‌भुत वर्ण है! अहो! इसका कैसा मनोहर रूप है! अहो! इस आर्यकी कैसी अद्‌भुत सौम्यता है! अहो! यह कैसी विस्मयकारक क्षमाके धारक है! अहो! इसके अंगसे वैराग्यकी कैसी उत्तम स्फुरणा है! अहो! इसकी कैसी निर्लोभता मालूम होती है! अहो! यह संयति कैसा निर्भय अप्रभुत्व-नम्रता

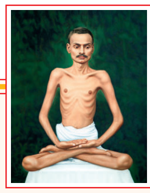

धारण किये हुए है ! अहो ! इसकी भोगकी निःसंगता कितनी सुदृढ है !'' यों चिंतन करते-करते, मुदित होते-होते, स्तुति करते-करते, धीरेसे चलते-चलते, प्रदक्षिणा देकर उस मुनिको वंदन करके, न अति समीप और न अति दूर वह बैठा। फिर अंजलिबद्ध होकर विनयसे उसने मुनिको पूछा—''हे आर्य ! आप प्रशंसा करने योग्य तरुण हैं; भोगविलासके लिए आपकी वय अनुकूल है; संसारमें नाना प्रकारके सुख हैं; ऋतु-ऋतुके कामभोग, जलसंबंधी कामभोग, तथा मनोहारिणी स्त्रियोंके मुखवचनोंका मधुर श्रवण होने पर भी इन सबका त्याग करके मुनित्वमें आप महान उद्यम कर रहे हैं, इसका क्या कारण ? यह मुझे अनुग्रहसे कहिये।''

राजाके ऐसे वचन सुनकर मुनिने कहा, ''मैं अनाथ था। हे महाराजा ! मुझे अपूर्व वस्तुको प्राप्त करानेवाला तथा योगक्षेमका करनेवाला, मुझपर अनुकंपा लानेवाला, करुणा करके परम सुखका देनेवाला सुहृत्-मित्र लेशमात्र भी कोई न हुआ। यह कारण मेरी अनाथताका था।''

श्रेणिक, मुनिके भाषणसे मुस्कराया। ''अरे ! आप जैसे महान ऋद्धिमानको नाथ क्यों न हो ? लीजिये, कोई नाथ नहीं है तो मैं होता हूँ। हे भयत्राण ! आप भोग भोगिये। हे संयति ! मित्र ! जातिसे दुर्लभ ऐसे अपने मनुष्य-भवको सफल कीजिये।''

अनाथीने कहा—''परन्तु अरे श्रेणिक, मगधदेशके राजन् ! तू स्वयं अनाथ है तो मेरा नाथ क्या होगा ? निर्धन धनाढ्य कहाँसे बना सके ? अबुध बुद्धिदान कहाँसे दे सके ? अज्ञ विद्वत्ता कहाँसे दे सके ? वंध्या संतान कहाँसे दे सके ? जब तू स्वयं अनाथ है, तब मेरा नाथ कहाँसे होगा ?'' मुनिके वचनोंसे राजा अति आकुल और अति विस्मित हुआ। जिन वचनोंका कभी श्रवण नहीं हुआ, उन वचनोंका यतिमुखसे श्रवण होनेसे वह शंकाग्रस्त हुआ और बोला—''मैं अनेक प्रकारके अश्वोंका भोगी हूँ, अनेक प्रकारके मदोन्मत्त हाथियोंका धनी हूँ, अनेक प्रकारकी सेना मेरे अधीन हैं; नगर, ग्राम, अंतःपुर, तथा चतुष्पादकी मेरे कोई न्यूनता नहीं है; मनुष्यसम्बन्धी सभी प्रकारके भोग मुझे प्राप्त हैं; अनुचर मेरी आज्ञाका भलीभाँति पालन करते हैं; पाँचों प्रकारकी संपत्ति मेरे घरमें है; सर्व मनोवांछित वस्तुएँ मेरे पास रहती हैं। ऐसा मैं जाज्वल्यमान होते हुए भी अनाथ कैसे हो सकता हूँ ? कहीं हे भगवन् ! आप मृषा बोलते हों।'' मुनिने कहा—''हे राजन् ! मेरे कहे हुए अर्थकी उपपत्तिको तूने ठीक नहीं समझा। तू स्वयं अनाथ है, परन्तु तत्सम्बन्धी तेरी अज्ञता है। अब मैं जो कहता हूँ उसे अव्यग्र एवं सावधान चित्तसे तू सुन, सुनकर फिर अपनी शंकाके सत्यासत्यका निर्णय करना। मैंने स्वयं जिस अनाथतासे मुनित्वको अंगीकृत किया है उसे मैं प्रथम तुझे कहता हूँ—

कौशाम्बी नामकी अति प्राचीन और विविध प्रकारके भेदोंको उत्पन्न करनेवाली एक सुन्दर नगरी थी। वहाँ ऋद्धिसे परिपूर्ण धनसंचय नामके मेरे पिता रहते थे। प्रथम यौवनावस्थामें हे महाराजा ! मेरी आँखोंमें अतुल्य एवं उपमारहित वेदना उत्पन्न हुई। दुःखप्रद दाहज्वर सारे शरीरमें प्रवर्तमान हुआ। शस्त्रसे भी अतिशय तीक्ष्ण वह रोग वैरीकी भाँति मुझपर कोपायमान हुआ। आँखोंकी उस असह्य वेदनासे मेरा मस्तक दुखने लगा। इन्द्रके वज्रके प्रहार सरीखी,

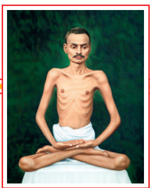

अन्यको भी रौद्र भय उत्पन्न करानेवाली उस अत्यंत-परम दारुण वेदनासे मैं बहुत शोकार्त था। शारीरिक विद्यामें निपुण, अनन्य मंत्रमूलके सुज्ञ वैद्यराज मेरी उस वेदनाका नाश करनेके लिए आये; अनेक प्रकारके औषधोपचार किये, परंतु वे वृथा गये। वे महानिपुण गिने जानेवाले वैद्यराज मुझे उस रोगसे मुक्त नहीं कर सके। हे राजन्! यही मेरी अनाथता थी। मेरी आँखोंकी वेदनाको दूर करनेके लिए मेरे पिता सारा धन देने लगे, परन्तु उससे भी मेरी वह वेदना दूर नहीं हुई। हे राजन्! यही मेरी अनाथता थी। मेरी माता पुत्रके शोकसे अति दुःखार्त हुई, परन्तु वह भी मुझे उस रोगसे नहीं छुडा सकी, हे महाराजा! यही मेरी अनाथता थी। एक उदरसे उत्पन्न हुए मेरे ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ भाई भरसक प्रयत्न कर चुके, परंतु मेरी वेदना दूर नहीं हुई; हे राजन्! यही मेरी अनाथता थी। एक उदरसे उत्पन्न हुई मेरी ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा भगिनियोंसे मेरा दुःख दूर नहीं हुआ। हे महाराजा! यही मेरी अनाथता थी। मेरी स्त्री जो पतिव्रता, मुझपर अनुरक्त और प्रेमवती थी, वह अश्रुपूर्ण आँखोंसे मेरे हृदयको सींचती और भिगोती थी। उसके अन्न-पानी देनेपर और नाना प्रकारके उबटन, चूवा आदि सुगंधी द्रव्य तथा अनेक प्रकारके फूल-चंदनादिके ज्ञात अज्ञात विलेपन किये जानेपर भी मैं उस यौवनवती स्त्रीको भोग नहीं सका। जो मेरे पाससे क्षणभर भी दूर नहीं रहती थी, अन्यत्र जाती नहीं थी, हे महाराजा! ऐसी वह स्त्री भी मेरे रोगको दूर नहीं कर सकी, यही मेरी अनाथता थी। यों किसीके प्रेमसे, किसीकी औषधिसे, किसीके विलापसे या किसीके परिश्रमसे वह रोग उपशांत नहीं हुआ। मैंने उस समय पुनः पुनः असह्य वेदना भोगी।

फिर मैं अनंत संसारसे खिन्न हो गया। यदि एक बार मैं इस महाविडंबनामय वेदनासे मुक्त हो जाऊँ तो खंती, दंती और निरारंभी प्रव्रज्याको धारण करूँ, यों चिन्तन करता हुआ मैं शयन कर गया। जब रात्रि व्यतीत हो गयी तब हे महाराजा! मेरी उस वेदनाका क्षय हो गया; और मैं नीरोग हो गया। मात, तात और स्वजन, बांधव आदिसे प्रभातमें पूछकर मैंने महाक्षमावान, इन्द्रिय-निग्रही और आरंभोपाधिसे रहित अनगारत्वको धारण किया। तत्पश्चात् मैं आत्मा परात्माका नाथ हुआ। सर्व प्रकारके जीवोंका मैं नाथ हूँ।'' अनाथी मुनिने इस प्रकार उस श्रेणिकराजाके मनपर अशरण भावनाको दृढ किया। अब उसे दूसरा अनुकूल उपदेश देते हैं—

''हे राजन्! यह अपना आत्मा ही दुःखसे भरपूर वैतरणीको करनेवाला है। अपना आत्मा ही क्रूर शाल्मली वृक्षके दुःखको उत्पन्न करनेवाला है। अपना आत्मा ही मनोवांछित वस्तुरूपी दूध देनेवाली कामधेनु गायके सुखको उत्पन्न करनेवाला है। अपना आत्मा ही नंदनवनकी भाँति आनंदकारी है। अपना आत्मा ही कर्मका करनेवाला है। अपना आत्मा ही उस कर्मको दूर करनेवाला है। अपना आत्मा ही दुःखोपार्जन करनेवाला है। अपना आत्मा ही सुखोपार्जन करनेवाला है। अपना आत्मा ही मित्र और अपना आत्मा ही वैरी है। अपना आत्मा ही निकृष्ट आचारमें स्थित और अपना आत्मा ही निर्मल आचारमें स्थित रहता है।'' इस प्रकार तथा अन्य अनेक प्रकारसे उस अनाथी मुनिने श्रेणिक राजाको संसारकी अनाथता कह सुनायी। इससे श्रेणिकराजा अति संतुष्ट हुआ। वह अंजलिबद्ध होकर यों बोला, ''हे भगवन्! आपने मुझे भलीभाँति उपदेश दिया। आपने जैसी थी वैसी अनाथता कह सुनायी। हे महर्षि! आप सनाथ,

अनाथी मुनि

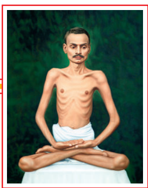

आप सबांधव और आप सधर्म हैं, आप सर्व अनाथोंके नाथ हैं। हे पवित्र संयति! मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। ज्ञानरूपी आपकी शिक्षाको चाहता हूँ। धर्मध्यानमें विघ्न करनेवाले भोग भोगने संबंधी, हे महाभाग्यवान्! मैंने आपको जो आमन्त्रण दिया तत्संबंधी अपने अपराधकी नत-मस्तक होकर क्षमा माँगता हूँ।'' इस प्रकार स्तुति करके राजपुरुष-केसरी परमानन्दको पाकर रोमांचसहित प्रदक्षिणा देकर सविनय वंदन करके स्वस्थानको चला गया।

प्रमाणशिक्षा—अहो भव्यो! महातपोधन, महामुनि, महा-प्रज्ञावान, महायशस्वी, महानिर्ग्रंथ और महाश्रुत अनाथी मुनिने मगधदेशके राजाको अपने बीते हुए चरित्रसे जो बोध दिया है वह सचमुच अशरणभावना सिद्ध करता है। महामुनि अनाथीके द्वारा सहन किये गये दुःखोंके तुल्य अथवा इससे अति विशेष असह्य दुःख अनंत आत्मा सामान्य दृष्टिसे भोगते हुए दिखायी देते हैं। तत्संबंधी तुम किंचित् विचार करो। संसारमें छायी हुई अनन्त अशरणताका त्याग करके सत्य शरणरूप उत्तम तत्त्वज्ञान और परम सुशीलका सेवन करो, अन्तमें ये ही मुक्तिके कारणरूप हैं। जिस प्रकार संसारमें रहे हुए अनाथी अनाथ थे, उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा तत्त्व-ज्ञानकी उत्तम प्राप्तिके बिना सदैव अनाथ ही है। सनाथ होनेके लिए पुरुषार्थ करना यही श्रेय है!

इति श्री 'भावनाबोध' ग्रन्थके प्रथम दर्शनके द्वितीय चित्रमें
'अशरणभावना'के उपदेशार्थ महानिर्ग्रंथका चरित्र समाप्त हुआ।

तृतीय चित्र

एकत्वभावना

(उपजाति)

शरीरमां व्याधि प्रत्यक्ष थाय,
ते कोई अन्ये लई ना शकाय ।
ए भोगवे एक स्व-आत्म पोते,
एकत्व एथी नयसुज्ञ गोते ।।

विशेषार्थ—शरीरमें प्रत्यक्ष दीखनेवाले रोग आदि जो उपद्रव होते हैं वे स्नेही, कुटुम्बी, पत्नी या पुत्र किसीसे लिये नहीं जा सकते; उन्हें मात्र एक अपना आत्मा स्वयं ही भोगता है। इसमें कोई भी भागी नहीं होता। तथा पाप-पुण्य आदि सभी विपाक अपना आत्मा ही भोगता है। यह अकेला आता है, अकेला जाता है; ऐसा सिद्ध करके विवेकको भलीभाँति जाननेवाले पुरुष एकत्वको निरन्तर खोजते हैं।

नमिराजर्षि और शक्रेंद्रका संवाद

दृष्टांत—महापुरुषके इस न्यायको अचल करनेवाले नमिराजर्षि और शक्रेंद्रका वैराग्योपदेशक संवाद यहाँपर प्रदर्शित करते हैं। नमिराजर्षि मिथिला नगरीके राजेश्वर थे। स्त्री, पुत्र आदिसे

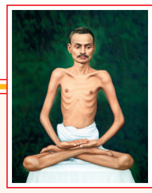

विशेष दुःख-समूहको प्राप्त न होते हुए भी एकत्वके स्वरूपको परिपूर्ण पहचाननेमें राजेश्वरने किंचित् विभ्रम किया नहीं है। शक्रेंद्र पहले जहाँ नमिराजर्षि निवृत्तिमें विराजते हैं, वहाँ विप्ररूपमें आकर परीक्षा हेतुसे अपना व्याख्यान शुरू करता है :—

विप्र—हे राजन्! मिथिला नगरीमें आज प्रबल कोलाहल व्याप्त हो रहा है। हृदय एवं मनको उद्वेग करनेवाले विलापके शब्दोंसे राजमंदिर और सामान्य घर छाये हुए हैं। मात्र तेरी दीक्षा ही इन सब दुःखोंका हेतु है। परके आत्माको जो दुःख अपनेसे होता है उस दुःखको संसारपरिभ्रमणका कारण मानकर तू वहाँ जा, भोला न बन।

नमिराज—(गौरवभरे वचनोंसे) हे विप्र! तू जो कहता है वह मात्र अज्ञानरूप है। मिथिला नगरीमें एक बगीचा था, उसके मध्यमें एक वृक्ष था, शीतल छायाके कारण वह रमणीय था, पत्र, पुष्प और फलसे वह युक्त था; नाना प्रकारके पक्षियोंको वह लाभदायक था; वायु द्वारा कंपित होनेसे उस वृक्षमें रहनेवाले पक्षी दुःखार्त एवं शरणरहित हो जानेसे आक्रंद करते हैं। वे स्वयं वृक्षके लिए विलाप करते नहीं हैं; अपना सुख नष्ट हो गया, इसलिए वे शोकार्त हैं।

विप्र—परन्तु यह देख! अग्नि और वायुके मिश्रणसे तेरा नगर, तेरे अन्तःपुर और मन्दिर जल रहे हैं, इसलिए वहाँ जा और उस अग्निको शांत कर।

नमिराज—हे विप्र! मिथिला नगरी, उन अन्तःपुरों और उन मन्दिरोंके जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है; जैसे सुखोत्पत्ति है वैसे मैं वर्तन करता हूँ। उन मंदिर आदिमें मेरा अल्पमात्र भी नहीं है। मैंने पुत्र, स्त्री आदिके व्यवहारको छोड दिया है। मुझे इनमेंसे कुछ प्रिय नहीं है और अप्रिय भी नहीं है।

विप्र—परन्तु हे राजन्! तू अपनी नगरीके लिए सघन किला बनाकर, सिंहद्वार, कोठे, किवाड और भुंगाल बनाकर और शतघ्नी खाई बनवानेके बाद जाना।

नमिराज—(हेतु-कारण-प्रे०[1]) हे विप्र! मैं शुद्ध श्रद्धारूपी नगरी बनाकर, संवररूपी भुंगाल बनाकर, क्षमारूपी शुभ गढ बनाऊँगा; शुभ मनोयोगरूपी कोठे बनाऊँगा, वचनयोगरूपी खाई बनाऊँगा, कायायोगरूपी शतघ्नी बनाऊँगा, पराक्रमरूपी धनुष् करूँगा, ईर्यासमितिरूपी पनच करूँगा, धीरतारूपी कमान पकडनेकी मूठ करूँगा, सत्यरूपी चापसे धनुष्को बाँधूँगा, तपरूपी बाण करूँगा और कर्मरूपी वैरीकी सेनाका भेदन करूँगा। लौकिक संग्रामकी मुझे रुचि नहीं है। मैं मात्र वैसे भावसंग्रामको चाहता हूँ।

विप्र—(हेतु-कारण-प्रे०) हे राजन्! शिखरबंध ऊँचे आवास करवाकर, मणिकंचनमय गवाक्षादि रखवाकर और तालाबमें क्रीडा करनेके मनोहर महालय बनवाकर फिर जाना।

नमिराज—(हेतु-कारण-प्रे०) तूने जिस जिस प्रकारके आवास गिनाये हैं उस उस प्रकारके आवास मुझे अस्थिर एवं अशाश्वत मालूम होते हैं। वे मार्गके घररूप लगते हैं। इसलिए जहाँ स्वधाम है, जहाँ शाश्वतता है, और जहाँ स्थिरता है वहाँ मैं निवास करना चाहता हूँ।

विप्र—(हेतु-कारण-प्रे०) हे क्षत्रियशिरोमणि! अनेक प्रकारके तस्करोंके उपद्रवको दूर करके, और इस तरह नगरीका कल्याण करके तू जाना।

---

१. हेतु और कारणसे प्रेरित।

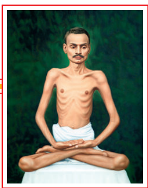

नमिराज—हे विप्र ! अज्ञानी मनुष्य अनेक बार मिथ्या दंड देते हैं। चोरी न करनेवाले जो शरीरादिक पुद्गल हैं वे लोकमें बाँधे जाते हैं; और चोरी करनेवाले जो इन्द्रियविकार हैं उन्हें कोई बाँध नहीं सकता। तो फिर ऐसा करनेकी क्या आवश्यकता ?

विप्र—हे क्षत्रिय ! जो राजा तेरी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं और जो नराधिप स्वतंत्रतासे चलते हैं उन्हें तू अपने वशमें करनेके बाद जाना।

नमिराज—(हेतु-कारण-प्रे०) दस लाख सुभटोंको संग्राममें जीतना दुष्कर गिना जाता है; तो भी ऐसी विजय करनेवाले पुरुष अनेक मिल जाते हैं, परन्तु एक स्वात्माको जीतनेवाला मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। उन दस लाख सुभटोंपर विजय पानेवालेकी अपेक्षा एक स्वात्माको जीतनेवाला पुरुष परमोत्कृष्ट है। आत्माके साथ युद्ध करना उचित है। बहिर्युद्धका क्या प्रयोजन है ? ज्ञानरूप आत्मासे क्रोधादि युक्त आत्माको जीतनेवाला स्तुतिपात्र है। पाँचों इन्द्रियोंको, क्रोधको, मानको, मायाको तथा लोभको जीतना दुष्कर है। जिसने मनोयोगादिको जीता उसने सबको जीता।

विप्र—(हेतु-कारण-प्रे०) समर्थ यज्ञ करके, श्रमण, तपस्वी, ब्राह्मण आदिको भोजन देकर, सुवर्ण आदिका दान देकर, मनोज्ञ भोगोंको भोगकर हे क्षत्रिय ! तू बादमें जाना।

नमिराज—(हेतु-कारण-प्रे०) हर महीने यदि दस लाख गायोंका दान दे तो भी उस दस लाख गायोंके दानकी अपेक्षा जो संयम ग्रहण करके संयमकी आराधना करता है, वह उसकी अपेक्षा विशेष मंगल प्राप्त करता है।

विप्र—निर्वाह करनेके लिए भिक्षासे सुशील प्रव्रज्यामें असह्य परिश्रम सहना पडता है; इसलिए उस प्रव्रज्याका त्याग करके अन्य प्रव्रज्यामें रुचि होती है; इसलिए इस उपाधिको दूर करनेके लिए तू गृहस्थाश्रममें रहकर पौषधादि व्रतमें तत्पर रहना। हे मनुष्याधिपति ! मैं ठीक कहता हूँ।

नमिराज—(हेतु-कारण-प्रे०) हे विप्र ! बाल अविवेकी चाहे जैसा उग्र तप करे परंतु वह सम्यक्श्रुतधर्म तथा चारित्रधर्मके तुल्य नहीं हो सकता। एकाध कला सोलह कलाओं जैसी कैसे मानी जाय ?

विप्र—अहो क्षत्रिय ! सुवर्ण, मणि, मुक्ताफल, वस्त्रालंकार और अश्वादिकी वृद्धि करके पीछे जाना।

नमिराज—(हेतु-कारण-प्रे०) मेरु पर्वत जैसे कदाचित् सोने-चाँदीके असंख्यात पर्वत हों तो भी लोभी मनुष्यकी तृष्णा नहीं बुझती। वह किंचित् मात्र संतोषको प्राप्त नहीं होता। तृष्णा आकाश जैसी अनंत है। धन, सुवर्ण, चतुष्पाद इत्यादिसे सकल लोक भर जाये इतना सब लोभी मनुष्यकी तृष्णा दूर करनेके लिए समर्थ नहीं है। लोभकी ऐसी निकृष्टता है। इसलिए संतोषनिवृत्तिरूप तपका विवेकी पुरुष आचरण करते हैं।

विप्र—(हेतु-कारण-प्रे०) हे क्षत्रिय ! मुझे अद्भुत आश्चर्य होता है कि तू विद्यमान भोगोंको छोडता है। फिर अविद्यमान कामभोगके संकल्प-विकल्प करके भ्रष्ट होगा। इसलिए इस सारी मुनित्वसंबंधी उपाधिको छोड।

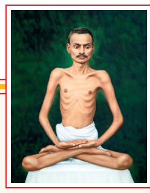

नमिराज–(हेतु-कारण-प्रे०) कामभोग शल्य सरीखे हैं, कामभोग विष सरीखे हैं, कामभोग सर्पके तुल्य हैं; जिनकी इच्छा करनेसे जीव नरकादिक अधोगतिमें जाता है; तथा क्रोध एवं मानके कारण दुर्गति होती हैं; मायाके कारण सद्‌गतिका विनाश होता है; लोभसे इस लोक व परलोकका भय होता है। इसलिए हे विप्र ! इसका तू मुझे बोध न दे। मेरा हृदय कभी भी विचलित होनेवाला नहीं हैं; इस मिथ्या मोहिनीमें अभिरुचि रखनेवाला नहीं है। जान-बूझ कर जहर कौन पिये ? जान-बूझकर दीपक लेकर कुएँमें कौन गिरे ? जान-बूझकर विभ्रममें कौन पडे ? मैं अपने अमृत जैसे वैराग्यके मधुर रसको अप्रिय करके इस विषको प्रिय करनेके लिए मिथिलामें आनेवाला नहीं हूँ।

महर्षि नमिराजकी सुदृढता देखकर शक्रेंद्रको परमानंद हुआ, फिर ब्राह्मणके रूपको छोडकर इन्द्रका रूप धारण किया। वंदन करनेके बाद मधुर वाणीसे वह राजर्षीश्वरकी स्तुति करने लगा–"हे महायशस्विन् ! बडा आश्चर्य है कि तूने क्रोधको जीता। आश्चर्य, तूने अहंकारका पराजय किया। आश्चर्य, तूने मायाको दूर किया। आश्चर्य, तूने लोभको वशमें किया। आश्चर्य, तेरी सरलता। आश्चर्य, तेरा निर्ममत्व। आश्चर्य, तेरी प्रधान क्षमा। आश्चर्य, तेरी निर्लोभता। हे पूज्य ! तू इस भवमें उत्तम है, और परभवमें उत्तम होगा। तू कर्मरहित होकर प्रधान सिद्धगतिमें जायेगा।" इस प्रकार स्तुति करते-करते प्रदक्षिणा देते-देते श्रद्धाभक्तिसे उस ऋषिके पादांबुजको वंदन किया। तदनंतर वह सुंदर मुकुटवाला शक्रेंद्र आकाशमार्गसे चला गया।

प्रमाणशिक्षा–विप्ररूपमें नमिराजके वैराग्यको परखनेमें इंद्रने क्या न्यूनता की है ? कुछ भी नहीं की। संसारकी जो-जो लोलुपताएँ मनुष्यको विचलित करनेवाली हैं, उन-उन लोलुपताओं संबंधी महागौरवसे प्रश्न करनेमें उस पुरंदरने निर्मल भावसे स्तुतिपात्र चातुर्य चलाया है। फिर भी निरीक्षण तो यह करना है कि नमिराज सर्वथा कंचनमय रहे हैं। शुद्ध एवं अखंड वैराग्यके वेगमें अपने बहनेको उन्होंने उत्तरमें प्रदर्शित किया है–"हे विप्र ! तू जिन-जिन वस्तुओंको मेरी कहलवाता है वे-वे वस्तुएँ मेरी नहीं हैं। मैं एक ही हूँ, अकेला जानेवाला हूँ; और मात्र प्रशंसनीय एकत्वको ही चाहता हूँ।" ऐसे रहस्यमें नमिराज अपने उत्तर और वैराग्यको दृढीभूत करते गये हैं। ऐसी परम प्रमाणशिक्षासे भरा हुआ उन महर्षिका चरित्र है। दोनों महात्माओंका पारस्परिक संवाद शुद्ध एकत्वको सिद्ध करनेके लिए तथा अन्य वस्तुओंका त्याग करनेके उपदेशके लिए यहाँ दर्शित किया है। इसे भी विशेष दृढीभूत करनेके लिए नमिराजने एकत्व कैसे प्राप्त किया, इस विषयमें नमिराजके एकत्व-संबंधको किंचित् मात्र प्रस्तुत करते हैं।

नमिराजर्षिका दृष्टांत

वे विदेह देश जैसे महान राज्यके अधिपति थे। अनेक यौवनवती मनोहारिणी स्त्रियोंके समुदायसे घिरे हुए थे। दर्शन-मोहनीयका उदय न होनेपर भी वे संसारलुब्धरूप दिखायी देते थे। किसी समय उनके शरीरमें दाहज्वर नामके रोगकी उत्पत्ति हुई। सारा शरीर मानो प्रज्वलित हो

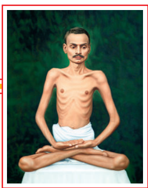

जाता हो ऐसी जलन व्याप्त हो गयी। रोम-रोममें सहस्र बिच्छुओंकी दंशवेदनाके समान दुःख उत्पन्न हो गया। वैद्य-विद्यामें प्रवीण पुरुषोंके औषधोपचारका अनेक प्रकारसे सेवन किया; परन्तु वह सब वृथा गया। लेशमात्र भी वह व्याधि कम न होकर अधिक होती गयी। औषधमात्र दाहज्वरके हितैषी होते गये। कोई औषध ऐसा न मिला कि जिसे दाहज्वरसे किंचित् भी द्वेष हो! निपुण वैद्य हताश हो गये, और राजेश्वर भी उस महाव्याधिसे तंग आ गये। उसे दूर करनेवाले पुरुषकी खोज चारों तरफ चलती थी। एक महाकुशल वैद्य मिला; उसने मलयगिरि चंदनका विलेपन करनेका सूचन किया। मनोरमा रानियाँ चन्दन घिसनेमें लग गयीं। चंदन घिसनेसे प्रत्येक रानीके हाथोंमें पहने हुए कंकणोंका समुदाय खलभलाहट करने लग गया। मिथिलेशके अंगमें एक दाहज्वरकी असह्य वेदना तो थी ही और दूसरी उन कंकणोंके कोलाहलसे उत्पन्न हुई। वे खलभलाहट सहन नहीं कर सके; इसलिए उन्होंने रानियोंको आज्ञा की, "तुम चंदन न घिसो, क्यों खलभलाहट करती हो? मुझसे यह खलभलाहट सहन नहीं हो सकती। एक तो मैं महाव्याधिसे ग्रसित हूँ, और यह दूसरा व्याधितुल्य कोलाहल होता है सो असह्य है।" सभी रानियोंने मंगलके तौर पर एक एक कंकण रखकर कंकण-समुदायका त्याग कर दिया, जिससे वह खलभलाहट शांत हो गयी। नमिराजने रानियोंसे कहा, "तुमने क्या चंदन घिसना बन्द कर दिया?" रानियोंने बताया, "नहीं, मात्र कोलाहल शांत करनेके लिए एक एक कंकण रखकर, दूसरे कंकणोंका परित्याग करके हम चंदन घिसती हैं। कंकणके समूहको अब हमने हाथमें नहीं रखा है, इससे खलभलाहट नहीं होती।" रानियोंके इतने वचन सुनते ही नमिराजके रोम-रोममें एकत्व स्फुरित हुआ, व्याप्त हो गया और ममत्व दूर हो गया—"सचमुच! बहुतोंके मिलनेसे बहुत उपाधि होती है। अब देख, इस एक कंकणसे लेशमात्र भी खलभलाहट नहीं होती; कंकणके समूहके कारण सिर चकरा देनेवाली खलभलाहट होती थी। अहो चेतन! तू मान कि एकत्वमें ही तेरी सिद्धि है। अधिक मिलनेसे अधिक उपाधि है। संसारमें अनन्त आत्माओंके सम्बन्धसे तुझे उपाधि भोगनेकी क्या आवश्यकता है? उसका त्याग कर और एकत्वमें प्रवेश कर। देख! यह एक कंकण अब खलभलाहटके बिना कैसी उत्तम शांतिमें रम रहा है? जब अनेक थे तब यह कैसी अशांति भोगता था? इसी तरह तू भी कंकणरूप है। इस कंकणकी भाँति तू जब तक स्नेही कुटुम्बीरूपी कंकणसमुदायमें पडा रहेगा तब तक भवरूपी खलभलाहटका सेवन करना पडेगा; और यदि इस कंकणकी वर्तमान स्थितिकी भाँति एकत्वका आराधन करेगा तो सिद्धगतिरूपी महा पवित्र शांति प्राप्त करेगा।" इस तरह वैराग्यमें उत्तरोत्तर प्रवेश करते हुए उन नमिराजको पूर्वजातिकी स्मृति हो आयी। प्रव्रज्या धारण करनेका निश्चय करके वे शयन कर गये। प्रभातमें मांगल्यरूप बाजोंकी ध्वनि गूँज उठी; दाहज्वरसे मुक्त हुए। एकत्वका परिपूर्ण सेवन करनेवाले उन श्रीमान नमिराज ऋषिको अभिवन्दन हो!

(शार्दूलविक्रीडित)

राणी सर्व मळी सुचंदन घसी, ने चर्चवामां हती,
बूझ्यो त्यां ककळाट कंकणतणो, श्रोती नमि भूपति।

नमिराजर्षि

राजाको दाहज्वरकी पीड़ा
वैद्य दवाई बनाते है । रानीया चंदन घीस रही है

नमिराजाका इन्द्रके साथ वार्तालाप

राजा दीक्षा लेकर ध्यानमें

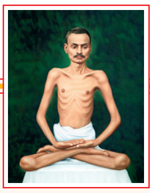

संवादे पण इन्द्रथी दृढ रह्यो, एकत्व साचुं कर्युं,
एवा ए मिथिलेशनुं चरित आ, संपूर्ण अत्रे थयुं ।।

विशेषार्थ—रानियोंका समुदाय चंदन घिसकर विलेपन करनेमें लगा हुआ था; उस समय कंकणकी खलभलाहटको सुनकर नमिराज प्रतिबुद्ध हुए। वे इन्द्रके साथ संवादमें भी अचल रहे; और उन्होंने एकत्वको सिद्ध किया।

ऐसे उन मुक्तिसाधक महावैरागीका चरित्र 'भावनाबोध' ग्रन्थके तृतीय चित्रमें पूर्ण हुआ।

चतुर्थ चित्र

अन्यत्वभावना

(शार्दूलविक्रीडित)

ना मारां तन रूप कांति युवती, ना पुत्र के भ्रात ना,
ना मारां भृत स्नेहीँओ स्वजन के, ना गोत्र के ज्ञात ना।
ना मारां धन धाम यौवन धरा, ए मोह अज्ञात्वना;
रे ! रे ! जीव विचार एम ज सदा, अन्यत्वदा भावना ।।

विशेषार्थ—यह शरीर मेरा नहीं, यह रूप मेरा नहीं, यह कांति मेरी नहीं, यह स्त्री मेरी नहीं, ये पुत्र मेरे नहीं, ये भाई मेरे नहीं, ये दास मेरे नहीं, ये स्नेही मेरे नहीं, ये संबंधी मेरे नहीं, यह गोत्र मेरा नहीं, यह जाति मेरी नहीं, यह लक्ष्मी मेरी नहीं, ये महालय मेरे नहीं, यह यौवन मेरा नहीं और यह भूमि मेरी नहीं; यह मोह मात्र अज्ञानताका है। सिद्धगति साधनेके लिए हे जीव ! अन्यत्वका बोध देनेवाली अन्यत्वभावनाका विचार कर ! विचार कर !

मिथ्या ममत्वकी भ्रांति दूर करनेके लिए और वैराग्यकी वृद्धिके लिए उत्तम भावसे मनन करने योग्य राजराजेश्वर भरतका चरित्र यहाँ पर उद्धृत करते हैं :—

राजाधिराज भरतेश्वर

दृष्टांत—जिसकी अश्वशालामें रमणीय, चतुर और अनेक प्रकारके तेज अश्वोंका समूह शोभा देता था; जिसकी गजशालामें अनेक जातिके मदोन्मत्त हस्ती झूम रहे थे; जिसके अंतःपुरमें नवयौवना, सुकुमारी और मुग्धा सहस्रों स्त्रियाँ विराजित हो रही थी; जिसकी निधिमें समुद्रकी पुत्री लक्ष्मी, जिसे विद्वान चंचलाकी उपमासे जानते हैं, स्थिर हो गयी थी; जिसकी आज्ञाको देवदेवांगनाएँ अधीन होकर मुकुटपर चढा रहे थे; जिसके प्राशनके लिए नाना प्रकारके षड्रस भोजन पल-पलमें निर्मित होते थे; जिसके कोमल कर्णके विलासके लिए बारीक एवं मधुर स्वरसे गायन करनेवाली वारांगनाएँ तत्पर थीं; जिसके निरीक्षण करनेके लिए अनेक प्रकारके नाटक चेटक थे; जिसकी यशःकीर्ति वायुरूपसे फैलकर आकाशकी तरह व्याप्त थी; जिसके शत्रुओंको सुखसे शयन करनेका वक्त नहीं आया था; अथवा जिसके बैरियोंकी वनिताओंके नयनोंसे सदैव

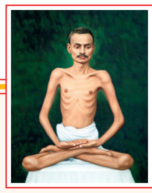

आँसू टपकते थे; जिससे कोई शत्रुता दिखानेके लिए तो समर्थ न था, परन्तु जिसकी ओर निर्दोषतासे उँगली उठानेमें भी कोई समर्थ न था; जिसके समक्ष अनेक मन्त्रियोंका समुदाय उसकी कृपाकी याचना करता था; जिसके रूप, कांति और सौंदर्य मनोहारी थे; जिसके अंगमें महान बल, वीर्य, शक्ति और उग्र पराक्रम उछल रहे थे; जिसके क्रीडा करनेके लिये महासुगन्धीमय बाग-बगीचे और वनोपवन थे; जिसके यहाँ प्रधान कुलदीपक पुत्रोंका समुदाय था; जिसकी सेवामें लाखों अनुचर सज्ज होकर खडे रहते थे; वह पुरुष जहाँ जहाँ जाता था; वहाँ-वहाँ खमा-खमाके उद्‌गारोंसे, कंचनके फूलोंसे और मोतियोंके थालोंसे उसका स्वागत होता था; जिसके कंकुमवर्णी पादपंकजका स्पर्श करनेके लिए इन्द्र जैसे भी तरसते रहते थे; जिसकी आयुधशालामें महायशस्वी दिव्य चक्रकी उत्पत्ति हुई थी; जिसके यहाँ साम्राज्यका अखंड दीपक प्रकाशमान था; जिसके सिरपर महान छ खंडकी प्रभुताका तेजस्वी और प्रकाशमान मुकुट सुशोभित था; कहनेका आशय यह है कि जिसके दलकी, जिसके नगर-पुरपट्टनकी, जिसके वैभवकी और जिसके विलासकी संसारकी दृष्टिसे किसी भी प्रकारकी न्यूनता न थी, ऐसा वह श्रीमान राजराजेश्वर भरत अपने सुंदर आदर्शभुवनमें वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर मनोहर सिंहासनपर बैठा था। चारों ओरके द्वार खुले थे; नाना प्रकारकेधूपोंका धूम्र सूक्ष्म रीतिसे फैल रहा था; नाना प्रकारके सुगंधी पदार्थ खूब महक रहे थे; नाना प्रकारके सुस्वरयुक्त बाजे यांत्रिक कलासे बज रहे थे; शीतल, मंद और सुगंधी यों त्रिविध वायुकी लहरें उठ रही थीं; आभूषण आदि पदार्थोंका निरीक्षण करते-करते वह श्रीमान राजराजेश्वर भरत उस भुवनमें अपूर्वताको प्राप्त हुआ।

उसके हाथकी एक उँगलीमेंसे अंगूठी निकल पडी। भरतका ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ और उँगली सर्वथा शोभाहीन दिखाई दी। नौ उँगलियाँ अंगूठियोंसे जो मनोहरता रखती थीं उस मनोहरतासे रहित इस उँगलीको देखकर भरतेश्वरको अद्‌भुत मूलभूत विचारकी प्रेरणा हुई। किस कारणसे यह उँगली ऐसी लगती है ? यह विचार करनेपर उसे मालूम हुआ कि इसका कारण अंगूठीका निकल जाना है। इस बातको विशेष प्रमाणित करनेके लिए उसने दूसरी उँगलीकी अंगूठी खींच निकाली। ज्यों ही दूसरी उँगलीमेंसे अंगूठी निकली त्यों ही वह उँगली भी शोभाहीन दिखायी दी; फिर इस बातको सिद्ध करनेके लिए उसने तीसरी उँगलीमेंसे भी अंगूठी सरका ली, इससे यह बात और अधिक प्रमाणित हुई। फिर चोथी उँगलीमेंसे अंगूठी निकाल ली, जिससे यह भी वैसी ही दिखाई दी। इस प्रकार अनुक्रमसे दसों उँगलियाँ खाली कर डाली; खाली हो जानेसे सभीका देखाव शोभाहीन मालूम हुआ। शोभाहीन दीखनेसे राजराजेश्वर अन्यत्व-भावनासे गद्‌गद होकर इस प्रकार बोला—

“अहोहो! कैसी विचित्रता है कि भूमिमें उत्पन्न हुई वस्तुको पीटकर कुशलतासे घडनेसे मुद्रिका बनी; इस मुद्रिकासे मेरी उँगली सुन्दर दिखायी दी; इस उँगलीमेंसे मुद्रिका निकल पडनेसे विपरीत दृश्य नजर आया; विपरीत दृश्यसे उँगलीकी शोभाहीनता और बेहूदापन खेदका कारण

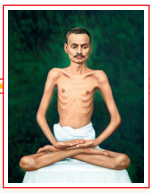

हुआ। शोभाहीन लगनेका कारण मात्र अंगूठी नहीं, यही ठहरा न? यदि अंगूठी होती तब तो ऐसी अशोभा मैं न देखता। इस मुद्रिकासे मेरी यह उँगली शोभाको प्राप्त हुई; इस उँगलीसे यह हाथ शोभा पाता है; और इस हाथसे यह शरीर शोभा पाता है। तब इसमें मैं किसकी शोभा मानूँ? अति विस्मयता! मेरी इस मानी जानेवाली मनोहर कांतिको विशेष दीप्त करनेवाले ये मणिमाणिक्यादिके अलंकार और रंग-बिरंगे वस्त्र ठहरे। यह कांति मेरी त्वचाकी शोभा ठहरी। यह त्वचा शरीरकी गुप्तताको ढँककर उसे सुन्दर दिखाती है। अहोहो! यह महाविपरीतता है! जिस शरीरको मैं अपना मानता हूँ, वह शरीर मात्र त्वचासे, वह त्वचा कांतिसे और वह कांति वस्त्रालंकारसे शोभा पाती है। तो फिर क्या मेरे शरीरकी तो कुछ शोभा ही नहीं न? रुधिर, मांस और हड्डियोंका ही केवल यह ढाँचा है क्या? और इस ढाँचेको मैं सर्वथा अपना मानता हूँ। कैसी भूल! कैसी भ्रांति! और कैसी विचित्रता है! मै केवल पर-पुद्गलकी शोभासे शोभित होता हूँ। किसीसे रमणीयता धारण करनेवाले इस शरीरको मैं अपना कैसे मानूँ? और कदाचित् ऐसा मानकर मैं इसमें ममत्वभाव रखूँ तो वह भी केवल दु:खप्रद और वृथा है। इस मेरे आत्माका इस शरीरसे एक समय वियोग होनेवाला है! आत्मा जब दूसरी देहको धारण करनेके लिए जायेगा तब इस देहके यहीं रहनेमें कोई शंका नहीं है। यह काया मेरी न हुई और न होगी तो फिर मैं इसे अपनी मानता हूँ या मानूँ, यह केवल मूर्खता है। जिसका एक समय वियोग होनेवाला है, और जो केवल अन्यत्वभाव रखती है उसमें ममत्वभाव क्या रखना? यह जब मेरी नहीं होती तब मुझे इसका होना क्या उचित है? नहीं, नहीं, यह जब मेरी नहीं तब मैं इसका नहीं, ऐसा विचार करूँ, दृढ करूँ, और प्रवर्तन करूँ, यह विवेकबुद्धिका तात्पर्य है। यह सारी सृष्टि अनंत वस्तुओंसे और पदार्थोंसे भरी हुई है; उन सब पदार्थोंकी अपेक्षा जिसके जितनी किसी भी वस्तुपर मेरी प्रीति नहीं है, वह वस्तु भी मेरी न हुई, तो फिर दूसरी कौनसी वस्तु मेरी होगी? अहो! मैं बहुत भूल गया। मिथ्या मोहमें फँस गया। वे नवयौवनाएँ, वे माने हुए कुलदीपक पुत्र, वह अतुल लक्ष्मी, वह छ खंडका महान राज्य, ये मेरे नहीं हैं। इनमेंसे लेशमात्र भी मेरा नहीं है। इनमें मेरा किंचित् भाग नहीं है। जिस कायासे मैं इन सब वस्तुओंका उपभोग करता हूँ, वह भोग्य वस्तु जब मेरी न हुई तब अपनी मानी हुई अन्य वस्तुएँ—स्नेही, कुटुम्बी इत्यादि—क्या मेरी होनेवाली थीं? नहीं, कुछ भी नहीं। यह ममत्वभाव मुझे नहीं चाहिए! ये पुत्र, ये मित्र, ये कलत्र, यह वैभव और यह लक्ष्मी, इन्हें मुझे अपना मानना ही नहीं है! मैं इनका नहीं और ये मेरे नहीं! पुण्यादिको साधकर मैंने जो जो वस्तुएँ प्राप्त की वे वस्तुएँ मेरी न हुई, इसके जैसा संसारमें क्या खेदमय है? मेरे उग्र पुण्यत्वका परिणाम यही न? अंतमें इन सबका वियोग ही न? पुण्यत्वका यह फल प्राप्त कर इसकी वृद्धिके लिए मैंने जो जो पाप किये वह सब मेरे आत्माको ही भोगना है न? और वह अकेले ही न? इसमें कोई सहभोक्ता नहीं ही न? नहीं नहीं। इन अन्यत्वभाववालोंके लिए ममत्वभाव दिखाकर आत्माका अहितैषी होकर मैं इसे रौद्र नरकका भोक्ता बनाऊँ इसके जैसा कौनसा अज्ञान है? ऐसी कौनसी भ्रांति है? ऐसा कौनसा अविवेक है? त्रेसठ शलाकापुरुषोंमें मैं एक गिना गया; फिर भी मैं ऐसे कृत्यको दूर न कर सकूँ और प्राप्त

राजाधिराज भरतेश्वरका राज्य वैभव

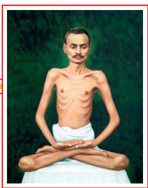

प्रभुताको खो बैठूँ, यह सर्वथा अयुक्त है। इन पुत्रोंका, इन प्रमदाओंका, इस राजवैभवका और इन वाहन आदिके सुखका मुझे कुछ भी अनुराग नहीं है! ममत्व नहीं है!"

राजराजेश्वर भरतके अंतःकरणमें वैराग्यका ऐसा प्रकाश पडा कि तिमिरपट दूर हो गया। शुक्लध्यान प्राप्त हुआ। अशेष-कर्म जलकर भस्मीभूत हो गये!!! महादिव्य और सहस्र किरणसे भी अनुपम कांतिमान केवलज्ञान प्रकट हुआ। उसी समय इन्होंने पंचमुष्टि केशलुंचन किया। शासनदेवीने इन्हें संतसाज दिया; और ये महाविरागी सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर चतुर्गति, चौबीस दंडक, तथा आधि, व्याधि एवं उपाधिसे विरक्त हुए। चपल संसारके सकल सुख-विलाससे इन्होंने निवृत्ति ली, प्रियाप्रियका भेद चला गया; और ये निरन्तर स्तवन करने योग्य परमात्मा हो गये।

प्रमाणशिक्षा—इस प्रकार ये छ खंडके प्रभु, देवोंके देव जैसे, अतुल साम्राज्यलक्ष्मीके भोक्ता, महायुके धनी, अनेक रत्नोंके धारक, राजराजेश्वर भरत आदर्शभुवनमें केवल अन्यत्व-भावना उत्पन्न होनेसे शुद्ध विरागी हुए!

सचमुच भरतेश्वरका मनन करने योग्य चरित्र संसारकी शोकार्तता और उदासीनताका पूरा-पूरा भाव, उपदेश और प्रमाण प्रदर्शित करता है। कहिये! इनके यहाँ क्या कमी थी? न थी इन्हें नवयौवना स्त्रियोंकी कमी कि न थी राजऋद्धिकी कमी, न थी विजयसिद्धिकी कमी कि न थी नवनिधिकी कमी, न थी पुत्र-समुदायकी कमी कि न थी कुटुम्ब-परिवारकी कमी, न थी रूपकांतिकी कमी कि न थी यशःकीर्तिकी कमी।

इस तरह पहले कही हुई इनकी ऋद्धिका पुनः स्मरण कराकर प्रमाणसे शिक्षाप्रसादीका लाभ देते हैं कि भरतेश्वरने विवेकसे अन्यत्वके स्वरूपको देखा, जाना और सर्पकंचुकवत् संसारका परित्याग करके उसके मिथ्या ममत्वको सिद्ध कर दिया। महावैराग्यकी अचलता, निर्ममता और आत्मशक्तिकी प्रफुल्लितता, यह सब इस महायोगीश्वरके चरित्रमें गर्भित है।

एक पिताके सौ पुत्रोंमेंसे निन्यानवें पुत्र पहलेसे ही आत्मसिद्धिको साधते थे। सौवें इन भरतेश्वरने आत्मसिद्धि साधी। पिताने भी यही सिद्धि साधी। उत्तरोत्तर आनेवाले भरतेश्वरी राज्यासनके भोगी इसी आदर्शभुवनमें इसी सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ऐसा कहा जाता है। यह सकल सिद्धिसाधक मंडल अन्यत्वको ही सिद्ध करके एकत्वमें प्रवेश कराता है। अभिवन्दन हो उन परमात्माओंको!

(शार्दूलविक्रीडित)

देखी आंगळी आप एक अडवी, वैराग्य वेगे गया,
छांडी राजसमाजने भरतजी, कैवल्यज्ञानी थया ।
चोथुं चित्र पवित्र ए ज चरिते, पाम्युं अहीं पूर्णता,
ज्ञानीनां मन तेह रंजन करो, वैराग्य भावे यथा ॥

विशेषार्थ—जिसने अपनी एक उँगलीको शोभाहीन देखकर वैराग्यके प्रवाहमें प्रवेश किया, और जिसने राजसमाजको छोडकर केवलज्ञान प्राप्त किया, ऐसे उस भरतेश्वरके चरित्रको धारण

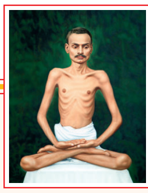

करके यह चौथा चित्र पूर्णताको प्राप्त हुआ। यह यथोचित वैराग्य भाव प्रदर्शित करके ज्ञानीपुरुषोंके मनको रंजन करनेवाला हो!

भावनाबोध ग्रन्थमें अन्यत्वभावनाके उपदेशके लिए प्रथम दर्शनके चतुर्थ चित्रमें भरतेश्वरका दृष्टांत और प्रमाणशिक्षा पूर्णताको प्राप्त हुए।

पंचम चित्र

अशुचिभावना

(गीतिवृत्त)

खाण मूत्र ने मळनी, रोग जरानुं निवासनुं धाम।
काया एवी गणीने, मान त्यजीने कर सार्थक आम॥

विशेषार्थ—हे चैतन्य! इस कायाको मल और मूत्रकी खानरूप, रोग और वृद्धताके रहनेके धाम जैसी मानकर उसका मिथ्या मान त्याग करके सनत्कुमारकी भाँति उसे सफल कर!

इन भगवान सनत्कुमारका चरित्र अशुचिभावनाकी प्रामाणिकता बतानेके लिए यहाँ पर शुरू किया जाता है।

सनतकुमार चक्रवर्ती

दृष्टांत—जो जो ऋद्धि, सिद्धि और वैभव भरतेश्वरके चरित्रमें वर्णित किये, उन सब वैभवादिसे युक्त सनत्कुमार चक्रवर्ती थे। उनका वर्ण और रूप अनुपम था। एक बार सुधर्मसभामें उस रूपकी स्तुति हुई। किन्हीं दो देवोंको यह बात न रुची। बादमें वे उस शंकाको दूर करनेके लिए विप्रके रूपमें सनत्कुमारके अंतःपुरमें गये। सनत्कुमारकी देहमें उस समय उबटन लगा हुआ था; उसके अंगोंपर मर्दनादिक पदार्थोंका मात्र विलेपन था। एक छोटी अङ्गोछी पहनी हुई थी। और वे स्नानमज्जन करनेके लिए बैठे थे। विप्रके रूपमें आये हुए देवता उनका मनोहर मुख, कंचनवर्णी काया और चन्द्र जैसी कान्ति देखकर बहुत आनन्दित हुए और जरा सिर हिलाया। इसपर चक्रवर्तीने पूछा, "आपने सिर क्यों हिलाया?" देवोंने कहा, "हम आपके रूप और वर्णका निरीक्षण करनेके लिए बहुत अभिलाषी थे। हमने जगह-जगह आपके वर्ण, रूपकी स्तुति सुनी थी; आज वह बात हमें प्रमाणित हुई, अतः हमें आनन्द हुआ, और सिर इसलिए हिलाया कि जैसा लोगोंमें कहा जाता है वैसा ही आपका रूप है। उससे अधिक है परन्तु कम नहीं।" सनत्कुमार स्वरूप-वर्णकी स्तुतिसे गर्वमें आकर बोले, "आपने इस समय मेरा रूप देखा सो ठीक है, परन्तु मैं जब राजसभामें वस्त्रालंकार धारण करके सर्वथा सज्ज होकर सिंहासनपर बैठता हूँ, तब मेरा रूप और मेरा वर्ण देखने योग्य है, अभी तो मैं शरीरमें उबटन लगाकर बैठा हूँ। यदि उस समय आप मेरा रूप वर्ण देखेंगे तो अद्भुत चमत्कारको प्राप्त होंगे और चकित हो जायेंगे।" देवोंने कहा, "तो फिर हम राजसभामें आयेंगे," यों कहकर वे वहाँसे चले गये।

तत्पश्चात् सनत्कुमारने उत्तम और अमूल्य वस्त्रालंकार धारण किये। अनेक प्रसाधनोंसे

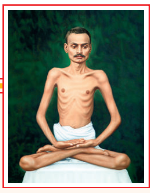

अपने शरीरको विशेष आश्चर्यकारी ढंगसे सजाकर वे राजसभामें आकर सिंहासनपर बैठे। आसपास समर्थ मंत्री, सुभट, विद्वान और अन्य सभासद अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये थे। राजेश्वर चमरछत्रसे और खमा-खमाके उद्‌गारोंसे विशेष शोभित तथा सत्कारित हो रहे थे। वहाँ वे देवता फिर विप्रके रूपमें आये। अद्‌भुत रूपवर्णसे आनन्दित होनेके बदले मानों खिन्न हुए हों ऐसे ढंगसे उन्होंने सिर हिलाया।

चक्रवर्तीने पूछा, "अहो ब्राह्मणों ! गत समयकी अपेक्षा इस समय आपने और ही तरहसे सिर हिलाया है, इसका क्या कारण है सो मुझे बतायें।" अवधिज्ञानके अनुसार विप्रोंने कहा, "हे महाराजा ! उस रूपमें और इस रूपमें भूमि-आकाशका फर्क पड गया है।" चक्रवर्तीने उसे स्पष्ट समझानेके लिए कहा। ब्राह्मणोंने कहा, "अधिराज ! पहले आपकी कोमल काया अमृत-तुल्य थी, इस समय विषतुल्य है। इसलिए जब अमृततुल्य अंग था तब हमें आनन्द हुआ था। इस समय विषतुल्य है अतः हमें खेद हुआ है। हम जो कहते हैं उस बातको सिद्ध करना हो तो आप अभी तांबूल थूकें; तत्काल उस पर मक्षिका बैठेगी और परधामको प्राप्त होगी।"

सनत्‌कुमारने यह परीक्षा की तो सत्य सिद्ध हुई। पूर्व कर्मके पापके भागमें इस कायाके मदका मिश्रण होनेसे इस चक्रवर्तीकी काया विषमय हो गयी थी। विनाशी और अशुचिमय कायाका ऐसा प्रपंच देखकर सनत्‌कुमारके अंतःकरणमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह संसार सर्वथा त्याग करने योग्य है। ऐसीकी ऐसी अशुचि स्त्री, पुत्र, मित्र आदिके शरीरमें है। यह सब मोह-मान करने योग्य नहीं है, यों कहकर वे छः खण्डकी प्रभुताका त्याग करके चल निकले। वे जब साधुरूपमें विचरते थे तब महारोग उत्पन्न हुआ। उनके सत्यत्वकी परीक्षा लेनेके लिए कोई देव वहाँ वैद्यके रूपमें आया। साधुको कहा, "मैं बहुत कुशल राजवैद्य हूँ, आपकी काया रोगका भोग बनी हुई है; यदि इच्छा हो तो तत्काल मैं उस रोगको दूर कर दूँ।" साधु बोले, "हे वैद्य ! कर्मरूपी रोग महोन्मत्त है; इस रोगको दूर करनेकी यदि आपकी समर्थता हो तो भले मेरा यह रोग दूर करें। यह समर्थता न हो तो यह रोग भले रहे।" देवताने कहा, "इस रोगको दूर करनेकी समर्थता तो मैं नहीं रखता।" बादमें साधुने अपनी लब्धिके परिपूर्ण बलसे थूकवाली अंगुलि करके उसे रोगपर लगाया कि तत्काल वह रोग नष्ट हो गया; और काया फिर जैसी थी वैसी हो गयी। बादमें उस समय देवने अपना स्वरूप प्रगट किया; धन्यवाद देकर, वंदन करके वह अपने स्थानको चला गया।

प्रमाणशिक्षा—रक्तपित्त जैसे सदैव खून-पीपसे खदबदाते हुए महारोगकी उत्पत्ति जिस कायामें है; पलभरमें विनष्ट हो जानेका जिसका स्वभाव है; जिसके प्रत्येक रोममें पौने दो दो रोगोंका निवास है; वैसे साढे तीन करोड रोमोंसे वह भरी होनेसे करोडों रोगोंका वह भंडार है, ऐसा विवेकसे सिद्ध है। अन्नादिकी न्यूनाधिकतासे वह प्रत्येक रोग जिस कायामें प्रगट होता है; मल, मूत्र, विष्ठा, हड्डी, मांस, पीप और श्लेष्मसे जिसका ढाँचा टिका हुआ है; मात्र त्वचासे जिसकी मनोहरता है; उस कायाका मोह सचमुच ! विभ्रम ही है ! सनत्‌कुमारने जिसका लेशमात्र मान किया वह भी जिससे सहन नहीं हुआ उस कायामें अहो पामर ! तू क्या मोह करता है ? 'यह मोह मंगलदायक नहीं है।'

ऐसा होनेपर भी आगे चलकर मनुष्यदेहको सर्व-देहोत्तम कहना पडेगा। इससे सिद्धगतिकी

सनत्कुमार चक्रवर्ती

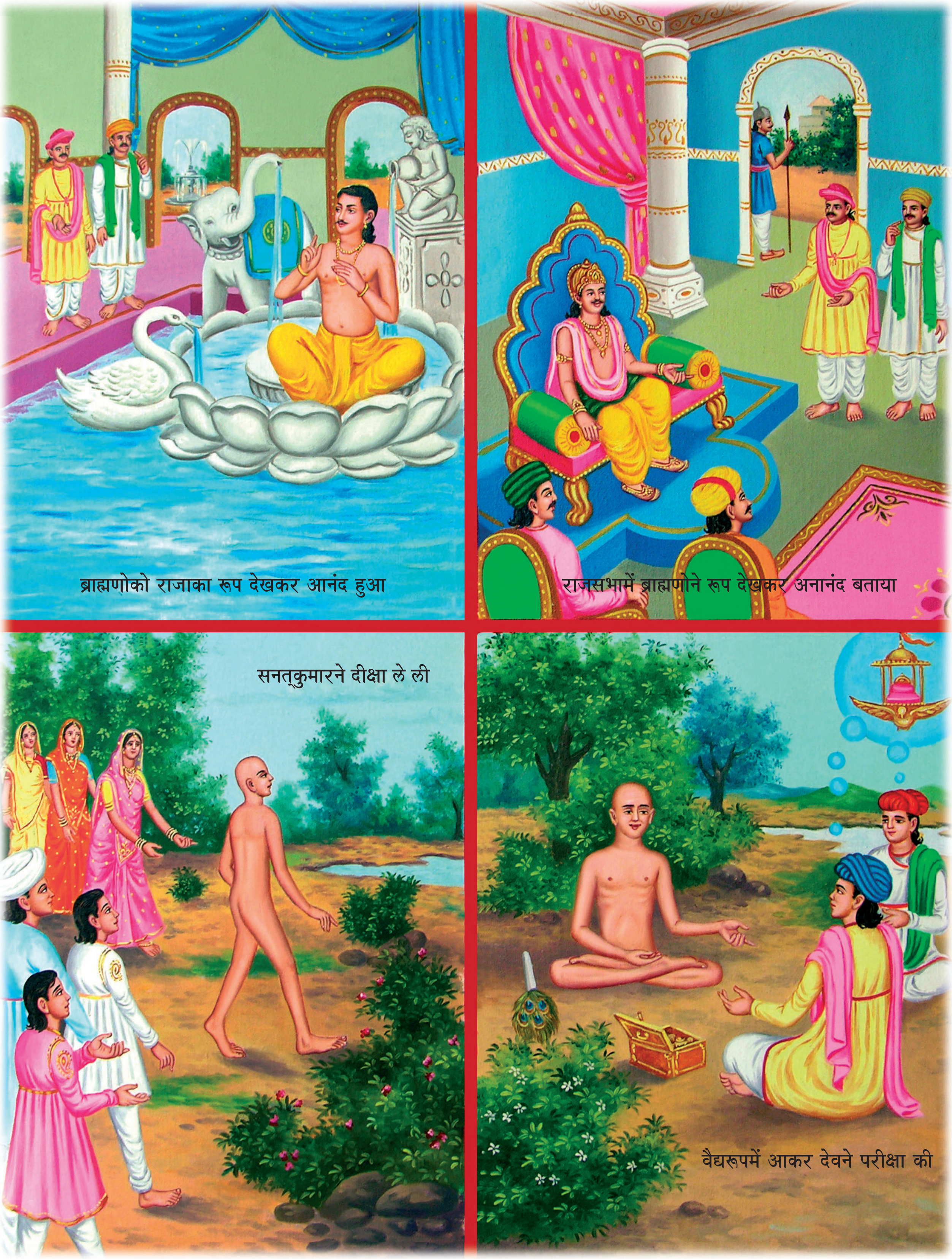

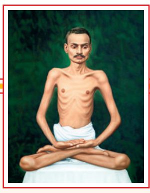

सिद्धि है, यह कहनेका आशय है। वहाँपर निःशंक होनेके लिए यहाँ नाममात्रका व्याख्यान किया है।

आत्माके शुभ कर्मका जब उदय आता है तब उसे मनुष्यदेह प्राप्त होती है। मनुष्य अर्थात् दो हाथ, दो पैर, दो आँखें, दो कान, एक मुख, दो ओष्ठ और एक नाकवाली देहका अधीश्वर ऐसा नहीं है। परन्तु उसका मर्म कुछ और ही है। यदि इस प्रकार अविवेक दिखायें तो फिर वानरको मनुष्य माननेमें क्या दोष है? उस बेचारेने तो एक पूँछ भी अधिक प्राप्त की है। पर नहीं, मनुष्यत्वका मर्म यह है—विवेकबुद्धि जिसके मनमें उदित हुई है, वही मनुष्य है; बाकी सभी इसके बिना दो पैरवाले पशु ही हैं। मेधावी पुरुष निरंतर इस मानवत्वका मर्म इसी प्रकार प्रकाशित करते हैं। विवेकबुद्धिके उदयसे मुक्तिके राजमार्गमें प्रवेश किया जाता है। और इस मार्गमें प्रवेश यही मानवदेहकी उत्तमता है। फिर भी इतना स्मृतिमें रखना उचित है कि यह देह केवल अशुचिमय और अशुचिमय ही है। इसके स्वभावमें और कुछ भी नहीं है।

भावनाबोध ग्रन्थमें अशुचिभावनाके उपदेशके लिए
प्रथम दर्शनके पाँचवें चित्रमें सनत्कुमारका दृष्टांत और प्रमाणशिक्षा पूर्ण हुए।

अंतर्दर्शन : षष्ठ चित्र

निवृत्तिबोध

(नाराच छंद)

अनंत सौख्य नाम दुःख त्यां रही न मित्रता!
अनंत दुःख नाम सौख्य प्रेम त्यां, विचित्रता!!
उघाड न्याय-नेत्र ने निहाळ रे! निहाळ तुं;
निवृत्ति शीघ्रमेव धारी ते प्रवृत्ति बाळ तुं॥

विशेषार्थ—जिसमें एकांत और अनंत सुखकी तरंगें उछलती हैं ऐसे शील, ज्ञानको नाममात्रके दुःखसे तंग आकर, मित्ररूप न मानते हुए उनमें अप्रीति करता है; और केवल अनंत दुःखमय ऐसे जो संसारके नाममात्रके सुख हैं, उनमें तेरा परिपूर्ण प्रेम है, यह कैसी विचित्रता है! अहो चेतन! अब तू अपने न्यायरूपी नेत्रोंको खोलकर देख! रे देख!!! देखकर शीघ्रमेव निवृत्ति अर्थात् महा-वैराग्यको धारण कर, और मिथ्या कामभोगकी प्रवृत्तिको जला दे!

ऐसी पवित्र महानिवृत्तिको दृढीभूत करनेके लिए उच्च विरागी युवराज मृगापुत्रका मनन करने योग्य चरित्र यहाँ प्रस्तुत करते हैं। तूने कैसे दुःखको सुख माना है? और कैसे सुखको दुःख माना है? इसे युवराजके मुखवचन तादृश सिद्ध करेंगे।

मृगापुत्र

दृष्टान्त—नाना प्रकारके मनोहर वृक्षोंसे भरे हुए उद्यानोंसे सुशोभित सुग्रीव नामक एक

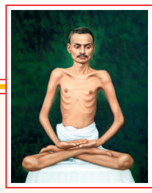

नगर है। उस नगरके राज्यासन पर बलभद्र नामका एक राजा राज्य करता था। उसकी प्रियंवदा पटरानीका नाम मृगा था। इस दम्पतीसे बलश्री नामके एक कुमारने जन्म लिया था। वे मृगापुत्रके नामसे प्रख्यात थे। वे मातापिताको अत्यन्त प्रिय थे। उन युवराजने गृहस्था-श्रममें रहते हुए भी संयतिके गुणोंको प्राप्त किया था; इसलिए वे दमीश्वर अर्थात् यतियोंमें अग्रेसर गिने जाने योग्य थे। वे मृगापुत्र शिखरबंद आनन्दकारी प्रासादमें अपनी प्राणप्रिया सहित दोगुंदक देवताकी भाँति विलास करते थे। वे निरंतर प्रमुदित मनसे रहते थे। प्रासादका दीवानखाना चंद्रकांतादि मणियों तथा विविध रत्नोंसे जडित था। एक दिन वे कुमार अपने झरोखेमें बैठे हुए थे। वहाँसे नगरका परिपूर्ण निरीक्षण होता था। जहाँ चार राज-मार्ग मिलते थे ऐसे चौकमें उनकी दृष्टि वहाँ पडी कि जहाँ तीन राजमार्ग मिलते थे। वहाँ उन्होंने महातप, महानियम, महासंयम, महाशील, और महागुणोंके धामरूप एक शान्त तपस्वी साधुको देखा। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों मृगापुत्र उस मुनिको खूब गौरसे देख रहे हैं।

इस निरीक्षणसे वे इस प्रकार बोले—"जान पडता है कि ऐसा रूप मैंने कहीं देखा है।" और यों बोलते-बोलते वे कुमार शुभ परिणामको प्राप्त हुए। मोहपट दूर हुआ और वे उपशमताको प्राप्त हुए। जातिस्मृतिज्ञान प्रकाशित हुआ। पूर्व-जातिकी स्मृति उत्पन्न होनेसे महाऋद्धिके भोक्ता उन मृगापुत्रको पूर्वके चारित्रका स्मरण भी हो आया। शीघ्रमेव वे विषयमें अनासक्त हुए और संयममें आसक्त हुए। मातापिताके पास आकर वे बोले, "पूर्व भवमें मैंने पाँच महाव्रत सुने थे, नरकमें जो अनन्त दुःख हैं वे भी मैंने सुने थे, तिर्यंचमें जो अनंत दुःख हैं वे भी मैंने सुने थे। उन अनन्त दुःखोंसे खिन्न होकर मैं उनसे निवृत्त होनेका अभिलाषी हुआ हूँ। संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिए हे गुरुजनों ! मुझे उन पाँच महाव्रतोंको धारण करनेकी अनुज्ञा दीजिये। "

कुमारके निवृत्तिपूर्ण वचन सुनकर मातापिताने उन्हें भोग भोगनेका आमंत्रण दिया। आमंत्रण-वचनसे खिन्न होकर मृगापुत्र यों कहते हैं—"अहो मात ! और अहो तात ! जिन भोगोंका आप मुझे आमंत्रण देते हैं उन भोगोंको मैं भोग चुका हूँ। वे भोग विषफल—किंपाक वृक्षके फलके समान है, भोगनेके बाद कडवे विपाकको देते हैं और सदैव दुःखोत्पत्तिके कारण हैं। यह शरीर अनित्य और केवल अशुचिमय है, अशुचिसे उत्पन्न हुआ है, यह जीवका अशाश्वत वास है, और अनन्त दुःखोंका हेतु है। यह शरीर रोग, जरा और क्लेशादिका भाजन है, इस शरीरमें मैं कैसे रति करूँ ? फिर ऐसा कोई नियम नहीं है कि यह शरीर बचपनमें छोडना है या बुढापेमें। यह शरीर पानीके फेनके बुलबुले जैसा है, ऐसे शरीरमें स्नेह करना कैसे योग्य हो सकता है ? मनुष्यभवमें भी यह शरीर कोढ, ज्वर आदि व्याधियोंसे तथा जरा-मरणसे ग्रसित होना सम्भाव्य है। इससे मैं कैसे प्रेम करूँ ?

जन्मका दुःख, जराका दुःख, रोगका दुःख, मृत्युका दुःख, इस तरह केवल दुःखके हेतु संसारमें है। भूमि, क्षेत्र, आवास, कंचन, कुटुम्ब, पुत्र, प्रमदा, बांधव, इन सबको छोडकर मात्र

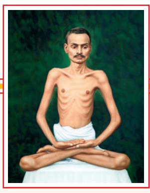

क्लेशित होकर इस शरीरसे अवश्यमेव जाना है। जैसे किंपाक वृक्षके फलका परिणाम सुखदायक नहीं है वैसे भोगका परिणाम भी सुखदायक नहीं है। जैसे कोई पुरुष महा प्रवासमें अन्न-जल साथमें न ले तो क्षुधा-तृषासे दुःखी होता है वैसे ही धर्मके अनाचरणसे परभवमें जानेपर वह पुरुष दुःखी होता है, जन्म-जरादिकी पीडा पाता है। महाप्रवासमें जाता हुआ जो पुरुष अन्न-जलादि साथमें लेता है वह पुरुष क्षुधा-तृषासे रहित होकर सुख पाता है उसी प्रकार धर्मका आचरण करनेवाला पुरुष परभवमें जानेपर सुख पाता है; अल्प कर्मरहित होता है और असातावेदनीयसे रहित होता है। हे गुरुजनों! जैसे किसी गृहस्थका घर प्रज्वलित होता है तब उस घरका मालिक अमूल्य वस्त्रादिको ले जाकर जीर्ण वस्त्रादिको वहीं छोड देता है, वैसे ही लोकको जलता देखकर जीर्ण वस्त्ररूप जरा-मरणको छोडकर अमूल्य आत्माको उस दाहसे (आप आज्ञा दें तो मैं) बचाऊँगा।''

मृगापुत्रके वचन सुनकर उसके मातापिता शोकार्त होकर बोले, ''हे पुत्र! यह तू क्या कहता है? चारित्रका पालन अति दुष्कर है। यतिको क्षमादिक गुण धारण करने पडते हैं, निभाने पडते हैं और यत्नासे सँभालने पडते हैं। संयतिको मित्र और शत्रुमें समभाव रखना पडता है, संयतिको अपने आत्मा और परात्मापर समबुद्धि रखनी पडती है; अथवा सर्व जगतपर समान भाव रखना पडता है। ऐसा पालनेमें दुष्कर प्राणातिपात-विरति प्रथम व्रत, उसे जीवनपर्यंत पालना पडता है। संयतिको सदैव अप्रमत्ततासे मृषा वचनका त्याग करना और हितकारी वचन बोलना, ऐसा पालनेमें दुष्कर दूसरा व्रत धारण करना पडता है। संयतिको दंत-शोधनके लिए एक सलाईके भी अदत्तका त्याग करना और निरवद्य एवं दोषरहित भिक्षाका ग्रहण करना, ऐसा पालनेमें दुष्कर तीसरा व्रत धारण करना पडता है। कामभोगके स्वादको जानने और अब्रह्मचर्यके धारण करनेका त्याग करके ब्रह्मचर्यरूप चौथा व्रत संयतिको धारण करना तथा उसका पालन करना बहुत दुष्कर है। धनधान्य, दास-समुदाय, परिग्रहके ममत्वका वर्जन और सभी प्रकारके आरंभका त्याग करके केवल निर्ममत्वसे यह पाँचवाँ महाव्रत संयतिको धारण करना अति विकट है। रात्रिभोजनका वर्जन तथा घृतादि पदार्थोंके वासी रखनेका त्याग करना अति दुष्कर है।

हे पुत्र! तू चारित्र चारित्र क्या करता है? चारित्र जैसी दुःखप्रद वस्तु दूसरी कौनसी है? क्षुधाका परिषह सहन करना; तृषाका परिषह सहन करना; शीतका परिषह सहन करना; उष्ण तापका परिषह सहन करना; डाँस-मच्छरका परिषह सहन करना; आक्रोशका परिषह सहन करना; उपाश्रयका परिषह सहन करना; तृणादिके स्पर्शका परिषह सहन करना; तथा मैलका परिषह सहन करना; हे पुत्र! निश्चय मान कि ऐसा चारित्र कैसे पाला जा सकता है? वधका परिषह और बन्धका परिषह कैसे विकट हैं? भिक्षाचरी कैसी दुष्कर है? याचना करना कैसा दुष्कर है? याचना करनेपर भी प्राप्त न हो, यह अलाभ-परिषह कैसा दुष्कर है? कायर पुरुषके हृदयका भेदन कर डालनेवाला केशलुंचन कैसा विकट है? तू विचार कर, कर्मवैरीके लिए रौद्र ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत कैसा दुष्कर है? सचमुच! अधीर आत्माके लिए यह सब अति-अति विकट है।

प्रिय पुत्र! तू सुख भोगनेके योग्य है। तेरा सुकुमार शरीर अति रमणीय रीतिसे निर्मल

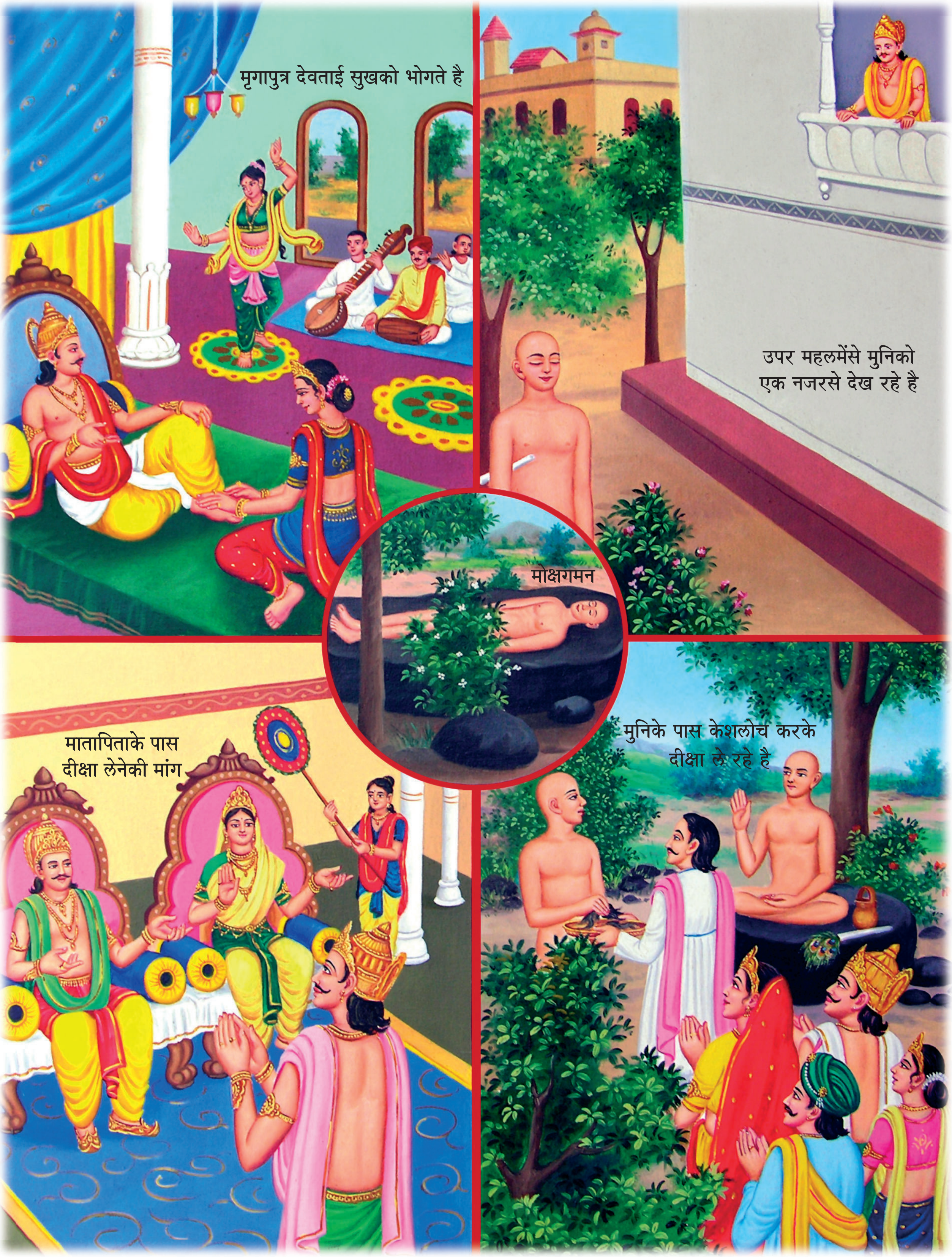
मृगापुत्र देवताई सुखको भोगते है
उपर महलमेंसे मुनिको
एक नजरसे देख रहे है
मोक्षगमन
मातापिताके पास
दीक्षा लेनेकी मांग
मुनिके पास केशलोच करके
दीक्षा ले रहे है

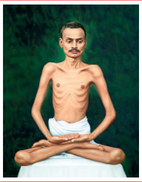

स्नान करनेके योग्य है। प्रिय पुत्र ! निश्चय ही तू चारित्र पालनेके लिए समर्थ नहीं है। जीवन पर्यन्त इसमें विश्राम नहीं है। संयतिके गुणोंका महासमुदाय लोहेकी भाँति बहुत भारी है। संयमका भार वहन करना अति अति विकट है। जैसे आकाशगंगाके प्रवाहके सामने जाना दुष्कर है वैसे ही यौवनवयमें संयम महादुष्कर है। जैसे प्रतिस्रोत जाना दुष्कर है, वैसे ही यौवनमें संयम महादुष्कर है। भुजाओंसे जैसे समुद्रको तरना दुष्कर है वैसे ही यौवनमें संयम-गुणसमुद्र पार करना महादुष्कर है। जैसे रेतका कौर नीरस है वैसे ही संयम भी नीरस है। जैसे खड्ग-धारापर चलना विकट है वैसे ही तपका आचरण करना महाविकट है। जैसे सर्प एकांत दृष्टिसे चलता है, वैसे ही चारित्रमें ईर्यासमितिके लिए एकांतिक चलना महादुष्कर है। हे प्रिय पुत्र ! जैसे लोहेके चने चबाना दुष्कर है वैसे ही संयमका आचरण करना दुष्कर है। जैसे अग्निकी शिखाको पीना दुष्कर है, वैसे ही यौवनमें यतित्व अंगीकार करना महादुष्कर है। सर्वथा मंद संहननके धनी कायर पुरुषके लिये यतित्व प्राप्त करना तथा पालना दुष्कर है। जैसे तराजूसे मेरु पर्वतका तौलना दुष्कर है वैसे ही निश्चलतासे, निःशंकतासे दशविध यतिधर्मका पालन करना दुष्कर है। जैसे भुजाओंसे स्वयंभूरमणसमुद्रको पार करना दुष्कर है वैसे ही उपशमहीन मनुष्यके लिए उपशमरूपी समुद्रको पार करना दुष्कर है।

हे पुत्र ! शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पाँच प्रकारसे मनुष्यसंबंधी भोगोंको भोगकर भुक्तभोगी होकर तू वृद्धावस्थामें धर्मका आचरण करना।''

मातापिताका भोगसंबंधी उपदेश सुनकर वे मृगापुत्र मातापितासे इस तरह बोल उठे—

''जिसे विषयकी वृत्ति न हो उसे संयम पालना कुछ भी दुष्कर नहीं है। इस आत्माने शारीरिक एवं मानसिक वेदना असातारूपसे अनंत बार सहन की है, भोगी है। महादुःखसे भरी, भयको उत्पन्न करनेवाली अति रौद्र वेदनाएँ इस आत्माने भोगी है। जन्म, जरा, मरण—ये भयके धाम हैं। चतुर्गतिरूप संसाराटवीमें भटकते हुए अति रौद्र दुःख मैंने भोगे हैं। हे गुरुजनों ! मनुष्यलोकमें जो अग्नि अतिशय उष्ण मानी गयी है, उस अग्निसे अनंत गुनी उष्ण ताप-वेदना नरकमें इस आत्माने भोगी है। मनुष्यलोकमें जो ठंड अति शीतल मानी गयी है उस ठंडसे अनंत गुनी ठंड नरकमें इस आत्माने असातासे भोगी है। लोहमय भाजनमें ऊपर पैर बाँधकर और नीचे मस्तक करके देवतासे वैक्रिय की हुई धायँ धायँ जलती हुई अग्निमें आक्रंदन करते हुए इस आत्माने अत्युग्र दुःख भोगे हैं। महा दवकी अग्नि जैसे मरुदेशमें जैसी बालू है उस बालू जैसी वज्रमय बालू कदंब नामक नदीकी बालू है, उस सरीखी उष्ण बालूमें पूर्वकालमें मेरे इस आत्माको अनंत बार जलाया है।

आक्रंदन करते हुए मुझे पकानेके लिए पकानेके बरतनमें अनंत बार डाला है। नरकमें महारौद्र परमाधामियोंने मुझे मेरे कडवे विपाकके लिए अनंत बार ऊँचे वृक्षकी शाखासे बाँधा था। बान्धवरहित मुझे लम्बी करवतसे चीरा था। अति तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त ऊँचे शाल्मलि वृक्षसे बाँधकर मुझे महाखेद दिया था। पाशमें बाँधकर आगे-पीछे खींचकर मुझे अति दुःखी किया था।

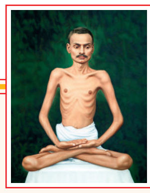

अत्यंत असह्य कोल्हूमें ईखकी भाँति आक्रंदन करता हुआ मैं अति रौद्रतासे पेला गया था। यह सब जो भोगना पडा वह मात्र मेरे अशुभ कर्मके अनंत बारके उदयसे ही था। साम नामके परमाधामीने मुझे कुत्ता बनाया, शबल नामके परमाधामीने उस कुत्तेके रूपमें मुझे जमीन पर पटका; जीर्ण वस्त्रकी भाँति फाडा; वृक्षकी भाँति छेदा; उस समय मैं अतीव तडफडाता था।

विकराल खड्गसे, भालेसे तथा अन्य शस्त्रोंसे उन प्रचंडोंने मुझे विखंडित किया था। नरकमें पाप कर्मसे जन्म लेकर विषम जातिके खंडोंका दुःख भोगनेमें कमी नहीं रही। परतंत्रतासे अनंत प्रज्वलित रथमें रोझकी भाँति बरबस मुझे जोता था। महिषकी भाँति देवताकी वैक्रिय की हुई अग्निमें मैं जला था। मैं जलता हुआ असातासे अत्युग्र वेदना भोगता था। ढंक-गीध नामके विकराल पक्षियोंकी सँडसे जैसी चोंचोंसे चूंथा जाकर अनंत बिलबिलाहटसे कायर होकर मैं विलाप करता था। तृषाके कारण जलपानके चिन्तनसे वेगमें दौडते हुए वैतरणीका छरपलेकी धार जैसा अनन्त दुःखद पानी मुझे प्राप्त हुआ था। जिसके पत्ते खड्गकी तीव्र धार जैसे हैं, जो महातापसे तप रहा है, वह असिपत्रवन मुझे प्राप्त हुआ था; वहाँ पूर्वकालमें मुझे अनंत बार छेदा गया था। मुद्गरसे, तीव्र शस्त्रसे, त्रिशूलसे, मूसलसे तथा गदासे मेरे शरीरके टुकडे किये गये थे। शरणरूप सुखके बिना मैंने अशरणरूप अनंत दुःख पाया था। वस्त्रकी भाँति मुझे छरपलेकी तीक्ष्ण धारसे, छुरीसे और कैंचीसे काटा गया था। मेरे खंड खंड टुकडे किये गये थे। मुझे तिरछा छेदा गया था। चरररर शब्द करती हुई मेरी त्वचा उतारी गयी थी। इस प्रकार मैंने अनंत दुःख पाया था।

मैं परवशतासे मृगकी भाँति अनंत बार पाशमें पकडा गया था। परमाधामियोंने मुझे मगर-मच्छके रूपमें जाल डालकर अनंत बार दुःख दिया था। बाजके रूपमें पक्षीकी भाँति जालमें बाँधकर मुझे अनंत बार मारा था। फरसा इत्यादि शस्त्रोंसे मुझे अनंत बार वृक्षकी तरह काटकर मेरे सूक्ष्म टुकडे किये गये थे। जैसे लुहार घनसे लोहेको पीटता है वैसे ही मुझे पूर्व कालमें परमाधामियोंने अनंत बार पीटा था। ताँबे, लोहे और सीसेको अग्निसे गलाकर उनका उबलता हुआ रस मुझे अनंत बार पिलाया था। अति रौद्रतासे वे परमाधामी मुझे यों कहते थे कि पूर्व भवमें तुझे माँस प्रिय था, अब ले यह माँस। इस तरह मैंने अपने ही शरीरके खंड खंड टुकडे अनंत बार निगले थे। मद्यकी प्रियताके कारण भी मुझे इससे कुछ कम दुःख उठाना नहीं पडा। इस प्रकार मैंने महा-भयसे, महात्राससे और महादुःखसे कंपायमान काया द्वारा अनंत वेदनाएँ भोगी थीं। जो वेदनाएँ सहन करनेमें अति तीव्र, रौद्र और उत्कृष्ट कालस्थितिवाली हैं, और जो सुननेमें भी अति भयंकर हैं; वे मैंने नरकमें अनंत बार भोगी थीं। जैसी वेदना मनुष्यलोकमें है वैसी दीखती परन्तु उससे अनंत गुनी अधिक असातावेदना नरकमें थी। सभी भवोंमें असाता-वेदना मैंने भोगी है। निमेषमात्र भी वहाँ साता नहीं है।''

इस प्रकार मृगापुत्रने वैराग्यभावसे संसार-परिभ्रमणके दुःख कह सुनाये। इसके उत्तरमें उसके मातापिता इस प्रकार बोले—''हे पुत्र! यदि तेरी इच्छा दीक्षा लेनेकी है तो दीक्षा ग्रहण कर;

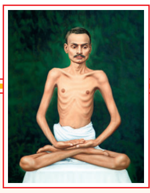

परंतु चारित्रमें रोगोत्पत्तिके समय चिकित्सा कौन करेगा ? दुःख-निवृत्ति कौन करेगा ? इसके बिना अति दुष्कर है।" मृगापुत्रने कहा—"यह ठीक है, परंतु आप विचार कीजिये कि अटवीमें मृग तथा पक्षी अकेले होते हैं; उन्हें रोग उत्पन्न होता है तब उनकी चिकित्सा कौन करता है ? जैसे वनमें मृग विहार करता है वैसे ही मैं चारित्रवनमें विहार करूँगा, और सत्रह प्रकारके शुद्ध संयमका अनुरागी बनूँगा; बारह प्रकारके तपका आचरण करूँगा तथा मृगचर्यासे विचरूँगा। जब मृगको वनमें रोगका उपद्रव होता है, तब उसकी चिकित्सा कौन करता है ?" ऐसा कहकर वे पुनः बोले, "कौन उस मृगको औषध देता है ? कौन उस मृगको आनन्द, शांति और सुख पूछता है ? कौन उस मृगको आहार, जल लाकर देता है ? जैसे वह मृग उपद्रवमुक्त होनेके बाद गहन वनमें जहाँ सरोवर होता है वहाँ जाता है, तृण-पानी आदिका सेवन करके फिर जैसे वह मृग विचरता है वैसे ही मैं विचरूँगा। सारांश यह कि मैं तद्रूप मृगचर्याका आचरण करूँगा। इस तरह मैं भी मृगकी भाँति संयमवान् बनूँगा। अनेक स्थलोंमें विचरता हुआ यति मृगकी भाँति अप्रतिबद्ध रहे। मृगकी तरह विचरण करके, मृगचर्याका सेवन करके और सावद्यको दूर करके यति विचरे। जैसे मृग तृण, जल आदिकी गोचरी करता है वैसे ही यति गोचरी करके संयम-भारका निर्वाह करे। दुराहारके लिए गृहस्थकी अवहेलना न करे, निंदा न करे, ऐसे संयमका मैं आचरण करूँगा।" "एवं पुत्ता जहासुखं—हे पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो !" इस प्रकार मातापिताने अनुज्ञा दी।

अनुज्ञा मिलनेके बाद ममत्वभावका छेदन करके जैसे महा नाग कंचुकका त्याग करके चला जाता है वैसे ही वे मृगापुत्र संसारका त्याग कर संयम-धर्ममें सावधान हुए। कंचन, कामिनी, मित्र, पुत्र, जाति और सगे संबंधियोंके परित्यागी हुए। जैसे वस्त्रको झटककर धूलको झाड डालते हैं वैसे ही वे सब प्रपंचका त्याग कर दीक्षा लेनेके लिए निकल पडे। वे पवित्र पाँच महाव्रतसे युक्त हुए, पंच समितिसे सुशोभित हुए, त्रिगुप्तिसे अनुगुप्त हुए, बाह्याभ्यंतर द्वादश तपसे संयुक्त हुए, ममत्वरहित हुए, निरहंकारी हुए। स्त्री आदिके संगसे रहित हुए, और सभी प्राणियोंमें उनका समभाव हुआ। आहार जल प्राप्त हो या न हो, सुख प्राप्त हो या दुःख, जीवन हो या मरण, कोई स्तुति करे या कोई निंदा करे, कोई मान दे या कोई अपमान करे, उन सब पर वे समभावी हुए। ऋद्धि, रस और सुख इस त्रिगारवके अहंपदसे वे विरक्त हुए। मनदंड, वचनदंड और तनदंडको दूर किया। चार कषायसे विमुक्त हुए। मायाशल्य, निदानशल्य तथा मिथ्यात्वशल्य इस त्रिशल्यसे विरागी हुए। सप्त महाभयसे वे अभय हुए। हास्य और शोकसे निवृत्त हुए। निदानरहित हुए। रागद्वेषरूपी बन्धनसे छूट गये। वांछारहित हुए। सभी प्रकारके विलासोंसे रहित हुए। कोई तलवारसे काटे और कोई चन्दनका विलेपन करे, उसपर समभावी हुए। उन्होंने पाप आनेके सभी द्वार रोक दिये। शुद्ध अन्तःकरणसहित धर्मध्यानादिके व्यापारमें वे प्रशस्त हुए। जिनेन्द्रके शासनतत्त्वमें परायण हुए। ज्ञानसे, आत्म-चारित्रसे, सम्यक्त्वसे, तपसे, प्रत्येक महाव्रतकी पाँच भावनाओंसे अर्थात पाँच महाव्रतोंकी पच्चीस भावनाओंसे और निर्मलतासे वे अनुपम विभूषित हुए। सम्यक् प्रकारसे बहुत वर्ष तक आत्मचारित्रका परिसेवन करके एक मासका अनशन करके

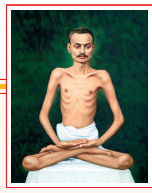

उन महाज्ञानी युवराज मृगापुत्रने प्रधान मोक्षगतिमें गमन किया।

प्रमाणशिक्षा—तत्त्वज्ञानियों द्वारा सप्रमाण सिद्ध की हुई द्वादश भावनाओंमेंसे संसार भावनाको दृढ करनेके लिए मृगापुत्रके चरित्रका यहाँ वर्णन किया है। संसाराटवीमें परिभ्रमण करते हुए अनन्त दुःख है, यह विवेकसिद्ध है; और इसमें भी, निमेषमात्र भी जिसमें सुख नहीं है ऐसी नरकाधोगतिके अनन्त दुःखोंका वर्णन युवज्ञानी योगींद्र मृगापुत्रने अपने मातापिताके समक्ष किया है, वह केवल संसारसे मुक्त होनेका विरागी उपदेश प्रदर्शित करता है। आत्मचारित्रको धारण करनेमें तप-परिषहादिके बहिर्दुःखको दुःख माना है, और महाधोगतिके परिभ्रमणरूप अनन्त दुःखको बहिर्भाव मोहिनीसे सुख माना है, यह देखो, कैसी भ्रमविचित्रता है ? आत्मचारित्रका दुःख दुःख नहीं परन्तु परम सुख है, और परिणाममें अनन्त सुखतरंगकी प्राप्तिका कारण है; और भोगविलासादिका सुख जो क्षणिक एवं बहिर्दृष्ट सुख है वह केवल दुःख ही है, और परिणाममें अनन्त दुःखका कारण है, इसे सप्रमाण सिद्ध करनेके लिए महाज्ञानी मृगापुत्रका वैराग्य यहाँ प्रदर्शित किया है। इन महाप्रभावक, महायशस्वी मृगापुत्रकी भाँति जो तपादिक और आत्म-चारित्रादिक शुद्धाचरण करता है, वह उत्तम साधु त्रिलोकमें प्रसिद्ध और प्रधान परमसिद्धिदायक सिद्धगतिको पाता है। संसारममत्वको दुःखवृद्धिरूप मानकर तत्त्वज्ञानी इन मृगापुत्रकी भाँति परम सुख और परमानंदके लिए ज्ञानदर्शनचारित्ररूप दिव्य चिंतामणिकी आराधना करते हैं।

महर्षि मृगापुत्रका सर्वोत्तम चरित्र (संसारभावनारूपसे) संसार-परिभ्रमणकी निवृत्तिका और उसके साथ अनेक प्रकारकी निवृत्तिका उपदेश देता है। इस परसे अंतर्दर्शनका नाम निवृत्तिबोध रखकर आत्मचारित्रकी उत्तमताका वर्णन करते हुए मृगापुत्रका यह चरित्र यहाँ पूर्ण होता है। तत्त्वज्ञानी संसार-परिभ्रमणनिवृत्ति और सावद्यउपकरणनिवृत्तिका पवित्र विचार निरंतर करते हैं।

इति अंतर्दर्शनके संसारभावनारूप छठे चित्रमें मृगापुत्रचरित्र समाप्त हुआ।

सप्तम चित्र

आस्रवभावना

द्वादश अविरति, षोडश कषाय, नव नोकषाय, पंच मिथ्यात्व, और पंचदश योग यह सब मिलकर सत्तावन आस्रव-द्वार अर्थात् पापके प्रवेश करनेके प्रणाल हैं।

कुंडरिक

दृष्टान्त : महाविदेहमें विशाल पुंडरीकिणी नगरीके राज्य सिंहासन पर पुंडरीक और कुंडरीक नामके दो भाई आरूढ थे। एक बार वहाँ महातत्त्वज्ञानी मुनिराज विहार करते हुए आये। मुनिके वैराग्य वचनामृतसे कुंडरीक दीक्षानुरक्त हुआ और घर आनेके बाद पुंडरीकको राज्य सोंपकर चारित्र अंगीकार किया। सरस-नीरस आहार करनेसे थोडे समयमें वह रोगग्रस्त

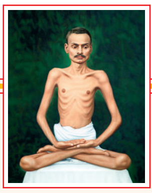

हुआ, जिससे वह चारित्रपरिणामसे भ्रष्ट हो गया। पुंडरीकिणी महानगरीकी अशोकवाटिकामें आकर उसने ओघा, मुखपटी वृक्ष पर लटका दिये। वह निरंतर यह परिचिंतन करने लगा कि पुंडरीक मुझे राज्य देगा या नहीं ? वनरक्षकने कुंडरीकको पहचान लिया। उसने जाकर पुंडरीकको विदित किया कि आकुल व्याकुल होता हुआ आपका भाई अशोक बागमें ठहरा हुआ है। पुंडरीकने आकर कुंडरीकके मनोभाव देखे और उसे चारित्रसे डगमगाते हुए देखकर कुछ उपदेश देनेके बाद राज्य सौंपकर घर आया।

कुंडरीककी आज्ञाको सामंत या मंत्री कोई भी नहीं मानते थे, बल्कि वह हजार वर्ष तक प्रव्रज्या पालकर पतित हुआ, इसलिए उसे धिक्कारते थे। कुंडरीकने राज्यमें आनेके बाद अति आहार किया। इस कारण वह रात्रिमें अति पीडित हुआ और वमन हुआ। अप्रीतिके कारण उसके पास कोई आया नहीं, इससे उसके मनमें प्रचण्ड क्रोध आया। उसने निश्चय किया कि इस पीडासे यदि मुझे शांति मिले तो फिर प्रभातमें इन सबको मैं देख लूँगा। ऐसे महादुर्ध्यानसे मरकर वह सातवीं नरकमें अपयठाण पाथडमें तैतीस सागरोपमकी आयुके साथ अनन्त दुःखमें जाकर उत्पन्न हुआ। कैसा विपरीत आस्रवद्वार!!

इति सप्तम चित्रमें आस्रवभावना समाप्त हुई।

अष्टम चित्र

संवरभावना

संवरभावना : उपर्युक्त आस्रवद्वार और पापप्रणालको सर्वथा रोकना (आते हुए कर्म-समूहको रोकना) यह संवरभाव है।

पुंडरिक

दृष्टान्त : (१) (कुंडरीकका अनुसंबंध) कुंडरीकके मुखपटी इत्यादि उपकरणोंको ग्रहण करके पुंडरीकने निश्चय किया कि मुझे पहले महर्षि गुरुके पास जाना चाहिए और उसके बाद ही अन्न जल ग्रहण करना चाहिए। नंगे पैरोंसे चलनेके कारण पैरोंमें कंकर एवं काँटे चुभनेसे लहूकी धाराएँ बह निकलीं, तो भी वह उत्तम ध्यानमें समताभावसे रहा। इस कारण यह महानुभाव पुंडरीक मृत्यु पाकर समर्थ सर्वार्थसिद्ध विमानमें तैतीस सागरोपमकी उत्कृष्ट आयुसहित देव हुआ। आस्रवसे कुंडरीककी कैसी दुःखदशा! और संवरसे पुंडरीककी कैसी सुखदशा!!

वज्रस्वामी

दृष्टांत : (२) श्री वज्रस्वामी कंचनकामिनीके द्रव्यभावसे सर्वथा परित्यागी थे। एक श्रीमंतकी रुक्मिणी नामकी मनोहारिणी पुत्री वज्रस्वामीके उत्तम उपदेशको सुनकर उन पर मोहित हो गयी। घर आकर उसने मातापितासे कहा, "यदि मैं इस देहसे पति करूँ, तो मात्र वज्रस्वामीको ही करूँ, अन्यके साथ संलग्न न होनेकी मेरी प्रतिज्ञा है।" रुक्मिणीको उसके माता-पिताने बहुत ही कहा, "पगली! विचार तो सही कि क्या मुनिराज भी कभी विवाह करते हैं?

कुंडरिक पुंडरिक

कुंडरिक दीक्षाको छोड बगीचेमें
राजा मुनिको मुकुट दे रहे है
कुंडरिक मरकर नरकमें
उल्टी करता हुआ कुंडरिक
पुंडरिक मुनि वेष लेकर गुरु के पास जा रहे है
पुंडरिक देवलोकमें

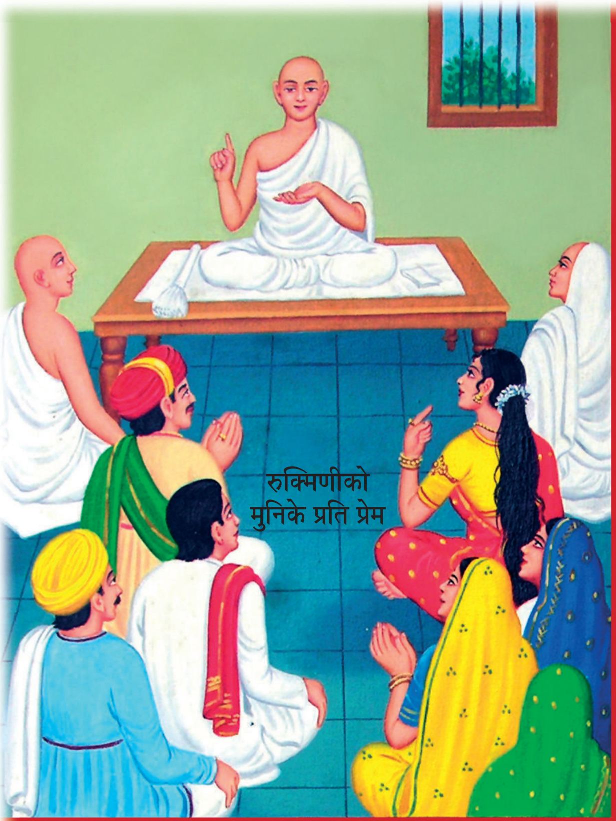
रुक्मिणीको
मुनिके प्रति प्रेम

शेठने मुनिको पुत्री और धन अर्पण किया

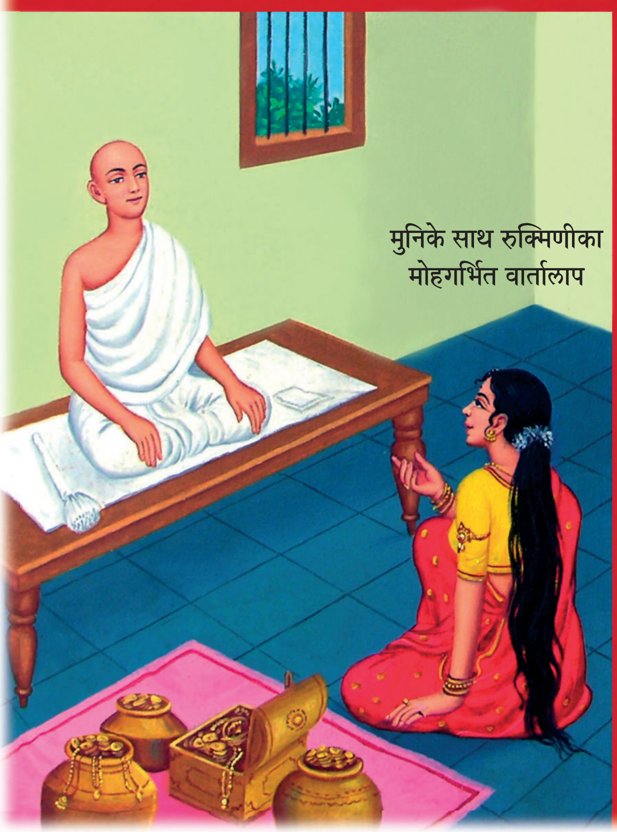
मुनिके साथ रुक्मिणीका
मोहगर्भित वार्तालाप

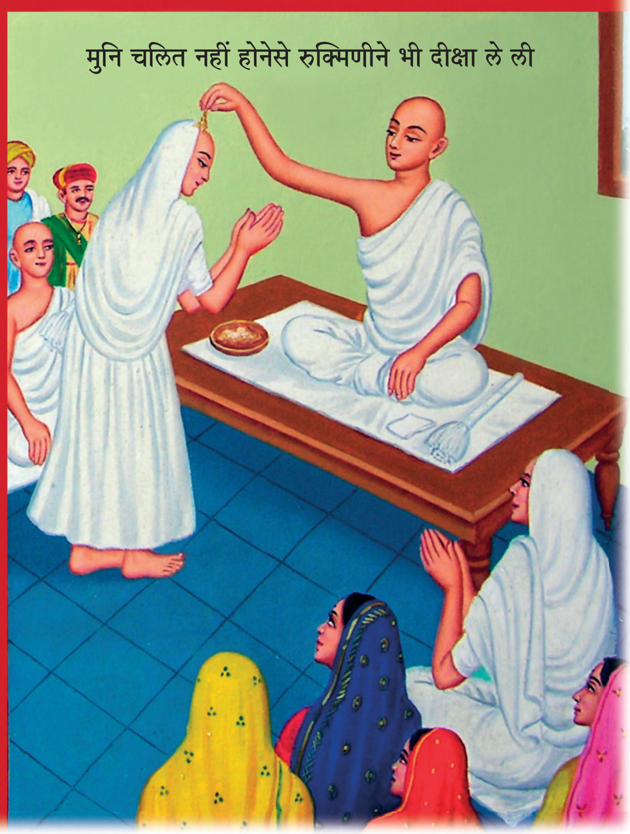
मुनि चलित नहीं होनेसे रुक्मिणीने भी दीक्षा ले ली

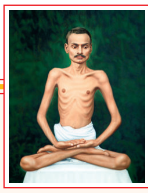

उन्होंने तो आस्रवद्वारकी सत्य प्रतिज्ञा ग्रहण की है।'' तो भी रुक्मिणीने कहना नहीं माना। निरुपाय होकर धनावा शेठने कुछ द्रव्य और सुरूपा रुक्मिणीको साथ लिया; और जहाँ वज्रस्वामी बिराजते थे वहाँ आकर कहा, ''यह लक्ष्मी है, इसका आप यथारुचि उपयोग करें, और वैभवविलासमें लगायें; और इस मेरी महासुकोमला रुक्मिणी नामकी पुत्रीसे पाणिग्रहण करे।'' यों कहकर वह अपने घर चला आया।

यौवनसागरमें तैरती हुई रूपराशि रुक्मिणीने वज्रस्वामीको अनेक प्रकारसे भोग संबंधी उपदेश दिया; भोगके सुखोंका अनेक प्रकारसे वर्णन किया; मनमोहक हावभाव तथा अनेक प्रकारके अन्य चलित करनेके उपाय किये; परंतु वे सर्वथा वृथा गये; महासुंदरी रुक्मिणी अपने मोहकटाक्षमें निष्फल हुई। उग्रचरित्र विजयमान वज्रस्वामी मेरुकी भाँति अचल और अडोल रहे। रुक्मिणीके मन, वचन और तनके सभी उपदेशों तथा हावभावोंसे वे लेशमात्र न पिघले। ऐसी महाविशाल दृढतासे रुक्मिणीने बोध प्राप्त करके निश्चय किया कि ये समर्थ जितेन्द्रिय महात्मा कभी चलित होनेवाले नहीं है। लोहे और पत्थरको पिघलाना सरल है, परंतु इन महापवित्र साधु वज्रस्वामीको पिघलानेकी आशा निरर्थक होते हुए भी अधोगतिके कारणरूप है। इस प्रकार सुविचार करके उस रुक्मिणीने पिताकी दी हुई लक्ष्मीको शुभक्षेत्रमें लगाकर चारित्र ग्रहण किया; मन, वचन और कायाका अनेक प्रकारसे दमन करके आत्मार्थ साधा। इसे तत्त्वज्ञानी संवरभावना कहते हैं।

इति अष्टम चित्रमें संवरभावना समाप्त हुई।

नवम चित्र

निर्जरा भावना

द्वादश प्रकारके तपसे कर्म-समूहको जलाकर भस्मीभूत कर डालनेका नाम निर्जराभावना है। तपके बारह प्रकारमें छः बाह्य और छः अभ्यंतर प्रकार है। अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रस-परित्याग, कायक्लेश और संलीनता ये छः बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, शास्त्र-पठन, ध्यान और कायोत्सर्ग ये छः अभ्यंतर तप है। निर्जरा दो प्रकारकी है—एक अकाम निर्जरा और दूसरी सकाम निर्जरा। निर्जराभावना पर एक विप्र-पुत्रका दृष्टांत कहते हैं।

दृढप्रहारी

दृष्टांत—किसी ब्राह्मणने अपने पुत्रको सप्तव्यसनभक्त जानकर अपने घरसे निकाल दिया। वह वहाँसे निकल पडा और जाकर उसने तस्करमंडलीसे स्नेहसंबंध जोडा। उस मंडलीके अग्रेसरने उसे अपने काममें पराक्रमी जानकर पुत्र बनाकर रखा। वह विप्रपुत्र दुष्टदमन करनेमें दृढप्रहारी प्रतीत हुआ। इससे उसका उपनाम दृढप्रहारी रखा गया। वह दृढप्रहारी तस्करोंमें अग्रेसर हुआ। नगर, ग्रामका नाश करनेमें वह प्रबल हिंमतवाला सिद्ध हुआ। उसने बहुतसे

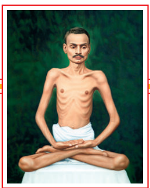

प्राणियोंके प्राण लिये। एक बार अपने संगति समुदायको लेकर उसने एक महानगरको लूटा। दृढप्रहारी एक विप्रके घर बैठा था। उस विप्रके यहाँ बहुत प्रेमभावसे क्षीरभोजन बना था। उस क्षीरभोजनके भाजनको उस विप्रके मनोरथी बाल-बच्चे घेरे बैठे थे। दृढप्रहारी उस भाजनको छूने लगा, तब ब्राह्मणीने कहा, "हे मूर्खराज ! इसे क्यों छूता है ? यह फिर हमारे काम नहीं आयेगा, इतना भी तू नहीं समझता ?" दृढप्रहारीको उन वचनोंसे प्रचंड क्रोध आ गया और उसने उस दीन स्त्रीको मौतके घाट उतार दिया। नहाता नहाता ब्राह्मण सहायताके लिए दौड आया, उसे भी उसने परभवको पहुँचा दिया। इतनेमें घरमेंसे गाय दौडती हुई आयी, और वह सींगोंसे दृढप्रहारीको मारने लगी। उस महादुष्टने उसे भी कालके हवाले कर दिया। उस गायके पेटमेंसे एक बछडा निकल पडा; उसे तडफडाता देखकर दृढप्रहारीके मनमें बहुत बहुत पश्चात्ताप हुआ। "मुझे धिक्कार है कि मैंने महाघोर हिंसाएँ कर डालीं ! मेरा इस महापापसे कब छुटकारा होगा ? सचमुच ! आत्मकल्याण साधनेमें ही श्रेय है !"

ऐसी उत्तम भावनासे उसने पंचमुष्टि केशलुंचन किया। नगरके द्वार पर आकर वह उग्र कायोत्सर्गमें स्थित रहा। वह पहिले सारे नगरके लिए संतापरूप हुआ था, इसलिए लोग उसे बहुविध संताप देने लगे। आते जाते हुए लोगोंके धूल-ढेलों, ईंट-पत्थरों और तलवारकी मूठोंसे वह अति संतापको प्राप्त हुआ। वहाँ लोगोंने डेढ महीने तक उसे तिरस्कृत किया, फिर थके और उसे छोड दिया। दृढप्रहारी वहाँसे कायोत्सर्ग पूरा कर दूसरे द्वार पर ऐसे ही उग्र कायोत्सर्गमें स्थित रहा। उस दिशाके लोगोंने भी उसी तरह तिरस्कृत किया, डेढ महीने तक छेडछाड कर छोड दिया। वहाँसे कायोत्सर्ग पूरा कर दृढप्रहारी तीसरे द्वार पर स्थित रहा। वहाँके लोगोंने भी बहुत तिरस्कृत किया। डेढ महीने बाद छोड देनेसे वह वहाँसे चौथे द्वार पर डेढ मास तक रहा। वहाँ अनेक प्रकारके परिषह सहन करके वह क्षमाधर रहा। छठे मासमें अनंत कर्म-समुदायको जलाकर उत्तरोत्तर शुद्ध होकर वह कर्मरहित हुआ। सर्व प्रकारके ममत्वका उसने त्याग किया। अनुपम केवलज्ञान पाकर वह मुक्तिके अनंत सुखानंदसे युक्त हो गया। यह निर्जराभावना दृढ हुई। अब—

दशम चित्र

लोकस्वरूपभावना

लोकस्वरूपभावना—इस भावनाका स्वरूप यहाँ संक्षेपमें कहना है। जैसे पुरुष दो हाथ कमरपर रखकर पैरोंको चौडा करके खडा रहे, वैसा ही लोकनाल किंवा लोकस्वरूप जानना चाहिये। वह लोकस्वरूप तिरछे थालके आकारका है। अथवा खडे मर्दलके समान है। नीचे भवनपति, व्यंतर और सात नरक है। मध्य भागमें अढाई द्वीप है। ऊपर बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक, पाँच अनुत्तर विमान और उन पर अनंत सुखमय पवित्र सिद्धोंकी सिद्धशिला है। यह

दृढ प्रहारी

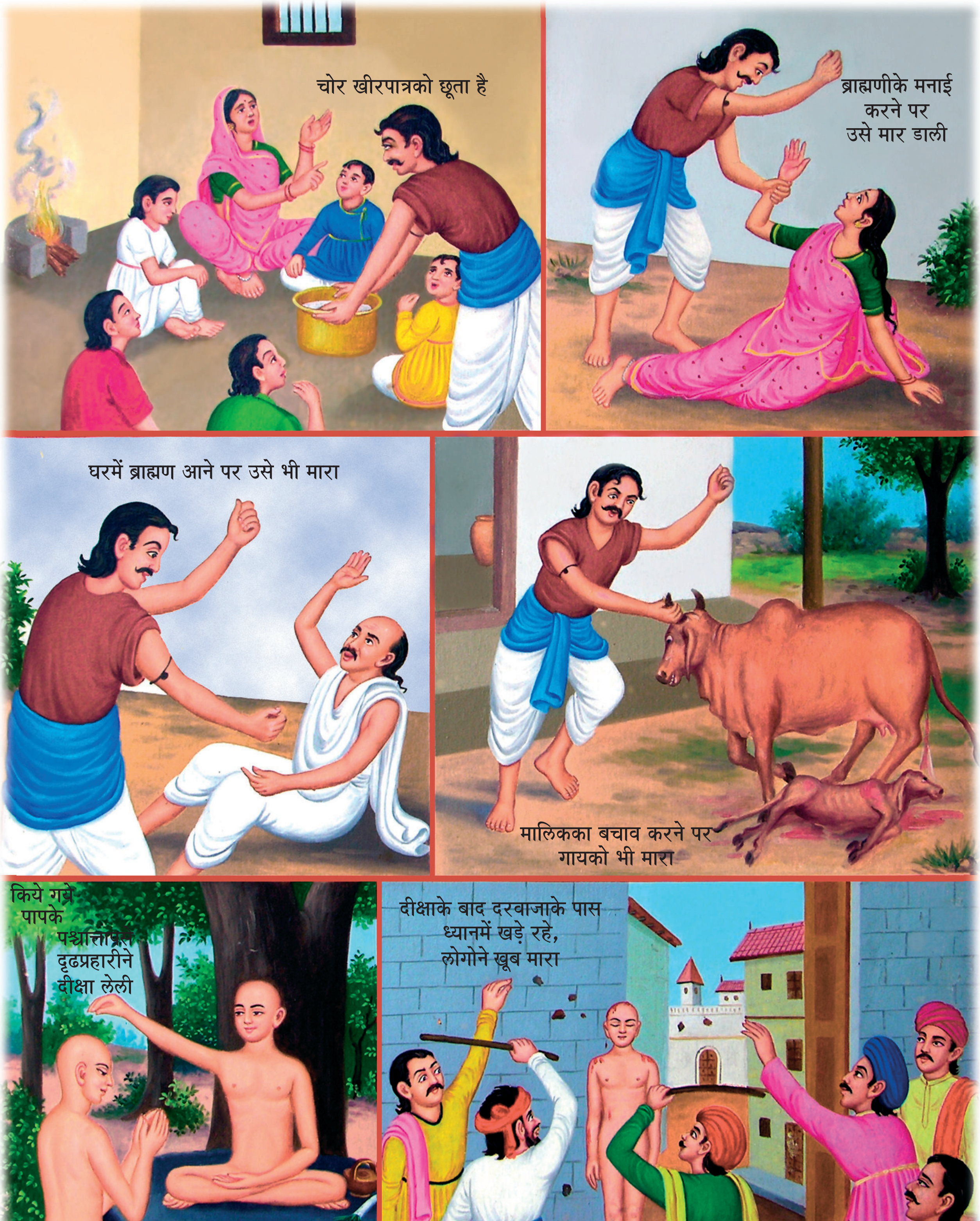
चोर खीरपात्रको छूता है
ब्राह्मणीके मनाई करने पर उसे मार डाली
घरमें ब्राह्मण आने पर उसे भी मारा
मालिकका बचाव करने पर गायको भी मारा
किये गये पापके पश्चात्तापसे दृढप्रहारीने दीक्षा लेली
दीक्षाके बाद दरवाजाके पास ध्यानमें खड़े रहे, लोगोने खूब मारा

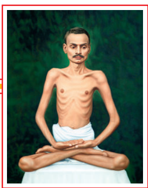

लोकालोक-प्रकाशक सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और निरुपम केवलज्ञानियोंने कहा है। संक्षेपमें लोकस्वरूपभावना कही गयी।

पापप्रणालको रोकनेके लिए आस्रवभावना और संवर-भावना, महाफली तपके लिए निर्जराभावना और लोकस्वरूपका किंचित् तत्त्व जाननेके लिए लोकस्वरूपभावना इस दर्शनके इन चार चित्रोंमें पूर्ण हुई।

दशम चित्र समाप्त।

ज्ञान, ध्यान, वैराग्यमय, उत्तम जहाँ विचार ।
ए भावे शुभ भावना, ते ऊतरे भव पार ॥

११. बोधिदुर्लभभावना—संसारमें भ्रमण करते हुए आत्माको सम्यग्ज्ञानकी प्रसादी प्राप्त होना दुर्लभ है; अथवा सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ तो चारित्र-सर्वविरतिपरिणामरूप धर्म प्राप्त होना दुर्लभ है; इस तरह चिंतन करना, यह ग्यारहवीं बोधिदुर्लभभावना।

१२. धर्मदुर्लभभावना—धर्मके उपदेशक तथा शुद्ध शास्त्रके बोधक गुरु और उनके उपदेशका श्रवण मिलना दुर्लभ है, इस तरह चिंतन करना, यह बारहवीं धर्मदुर्लभभावना।

मोक्षमाला ग्रंथमेंसे दृष्टांत

शिक्षापाठ १७ : बाहुबल

बाहुबल अर्थात् अपनी भुजाका बल यह अर्थ यहाँ नहीं करना है; क्योंकि बाहुबल नामके महापुरुषका यह एक छोटा परंतु अद्‌भुत चरित्र है।

ऋषभदेवजी भगवान सर्वसंगका परित्याग करके भरत और बाहुबल नामके अपने दो पुत्रोंको राज्य सौंप कर विहार करते थे। तब भरतेश्वर चक्रवर्ती हुआ। आयुधशालामें चक्रकी उत्पत्ति होनेके बाद उसने प्रत्येक राज्य पर अपना आम्नाय स्थापित किया और छः खंडकी प्रभुता प्राप्त की। मात्र बाहुबलने ही यह प्रभुता अंगीकार नहीं की। इससे परिणाममें भरतेश्वर और बाहुबलके बीच युद्ध शुरू हुआ। बहुत समय तक भरतेश्वर या बाहुबल इन दोनोंमेंसे एक भी पीछे नहीं हटा, तब क्रोधावेशमें आकर भरतेश्वरने बाहुबल पर चक्र छोडा। एक वीर्यसे उत्पन्न हुए भाई पर वह चक्र प्रभाव नहीं कर सकता, इस नियमसे वह चक्र फिरकर वापस भरतेश्वरके हाथमें आया। भरतके चक्र छोडनेसे बाहुबलको बहुत क्रोध आया। उसने महाबलवत्तर मुष्टि उठायी। तत्काल वहाँ उसकी भावनाका स्वरूप बदला। उसने विचार किया, "मैं यह बहुत निंदनीय कर्म करता हूँ। इसका परिणाम कैसा दुःखदायक है! भले भरतेश्वर राज्य भोगे। व्यर्थ ही परस्परका नाश किसलिए करना? यह मुष्टि मारनी योग्य नहीं है; तथा उठायी है तो इसे अब पीछे हटाना

भरत बाहुबलका युद्ध

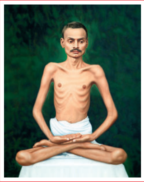

भी योग्य नहीं है।'' यों कहकर उसने पंचमुष्टि केशलुंचन किया; और वहाँसे मुनित्वभावसे चल निकला। उसने, भगवान आदीश्वर जहाँ अठानवें दीक्षित पुत्रों और आर्यआर्याके साथ विहार करते थे, वहाँ जानेकी इच्छा की; परंतु मनमें मान आया। ''वहाँ मैं जाऊँगा तो अपनेसे छोटे अठानवें भाइयोंको वंदन करना पडेगा। इसलिए वहाँ तो जाना योग्य नहीं।'' फिर वनमें वह एकाग्र ध्यानमें रहा। धीरे-धीरे बारह मास हो गये। महातपसे काया हड्डियोंका ढाँचा हो गयी। वह सूखे पेड जैसा दीखने लगा, परंतु जब तक मानका अंकुर उसके अंतःकरणसे हटा न था तब तक उसने सिद्धि नहीं पायी। ब्राह्मी और सुंदरीने आकर उसे उपदेश दिया, ''आर्य वीर ! अब मदोन्मत्त हाथीसे उतरिये, इसके कारण तो बहुत सहन किया।'' उनके इन वचनोंसे बाहुबल विचारमें पडा। विचार करते-करते उसे भान हुआ, ''सत्य है। मैं मानरूपी मदोन्मत्त हाथीसे अभी कहाँ उतरा है ? अब इससे उतरना ही मंगलकारक है।'' ऐसा कहकर उसने वंदन करनेके लिए कदम उठाया कि वह अनुपम दिव्य कैवल्यकमलाको प्राप्त हुआ। पाठक ! देखो, मान कैसी दुरित वस्तु है ! !

शिक्षापाठ २२ : कामदेव श्रावक

महावीर भगवानके समयमें द्वादश व्रतको विमल भावसे धारण करनेवाला, विवेकी और निर्ग्रंथवचनानुरक्त कामदेव नामका एक श्रावक उनका शिष्य था। एक समय इन्द्रने सुधर्मासभामें कामदेवकी धर्म-अचलताकी प्रशंसा की। उस समय वहाँ एक तुच्छ बुद्धिमान देव बैठा हुआ था। [१]''वह बोला—''यह तो समझमें आया, जब तक नारी न मिले तब तक ब्रह्मचारी तथा जब तक परिषह न पडे हों तब तक सभी सहनशील और धर्मदृढ।' यह मेरी बात मैं उसे चलायमान करके सत्य कर दिखाऊँ।'' धर्मदृढ कामदेव उस समय कायोत्सर्गमें लीन था। देवताने विक्रियासे हाथीका रूप धारण किया; और फिर कामदेवको खूब रौंदा, तो भी वह अचल रहा; फिर मूसल जैसा अंग बनाकर काले वर्णका सर्प होकर भयंकर फुँकार किये, तो भी कामदेव कायोत्सर्गसे लेशमात्र चलित नहीं हुआ। फिर अट्टहास्य करते हुए राक्षसकी देह धारण करके अनेक प्रकारके परिषह किये, तो भी कामदेव कायोत्सर्गसे डिगा नहीं। सिंह आदिके अनेक भयंकर रूप किये, तो भी कामदेवने कायोत्सर्गमें लेश हीनता नहीं आने दी। इस प्रकार देवता रात्रिके चारों प्रहर उपद्रव करता रहा, परंतु वह अपनी धारणामें सफल नहीं हुआ। फिर उसने उपयोगसे देखा तो कामदेवको मेरुके शिखरकी भाँति अडोल पाया। कामदेवकी अद्‌भुत निश्चलता जानकर उसे विनयभावसे प्रणाम करके अपने दोषोंकी क्षमा माँगकर वह देवता स्वस्थानको चला गया।

'कामदेव श्रावककी धर्मदृढता हमें क्या बोध देती है, यह बिना कहे भी समझमें आ गया होगा। इसमेंसे यह तत्त्वविचार लेना है कि निर्ग्रंथ-प्रवचनमें प्रवेश करके दृढ रहना। कायोत्सर्ग इत्यादि जो ध्यान करना है, उसे यथासंभव एकाग्र चित्तसे और दृढतासे निर्दोष करना।' चलविचल भावसे कायोत्सर्ग बहुत दोषयुक्त होता है। 'पाईके लिए धर्मकी सौगन्ध खानेवाले धर्ममें

कामदेव श्रावक

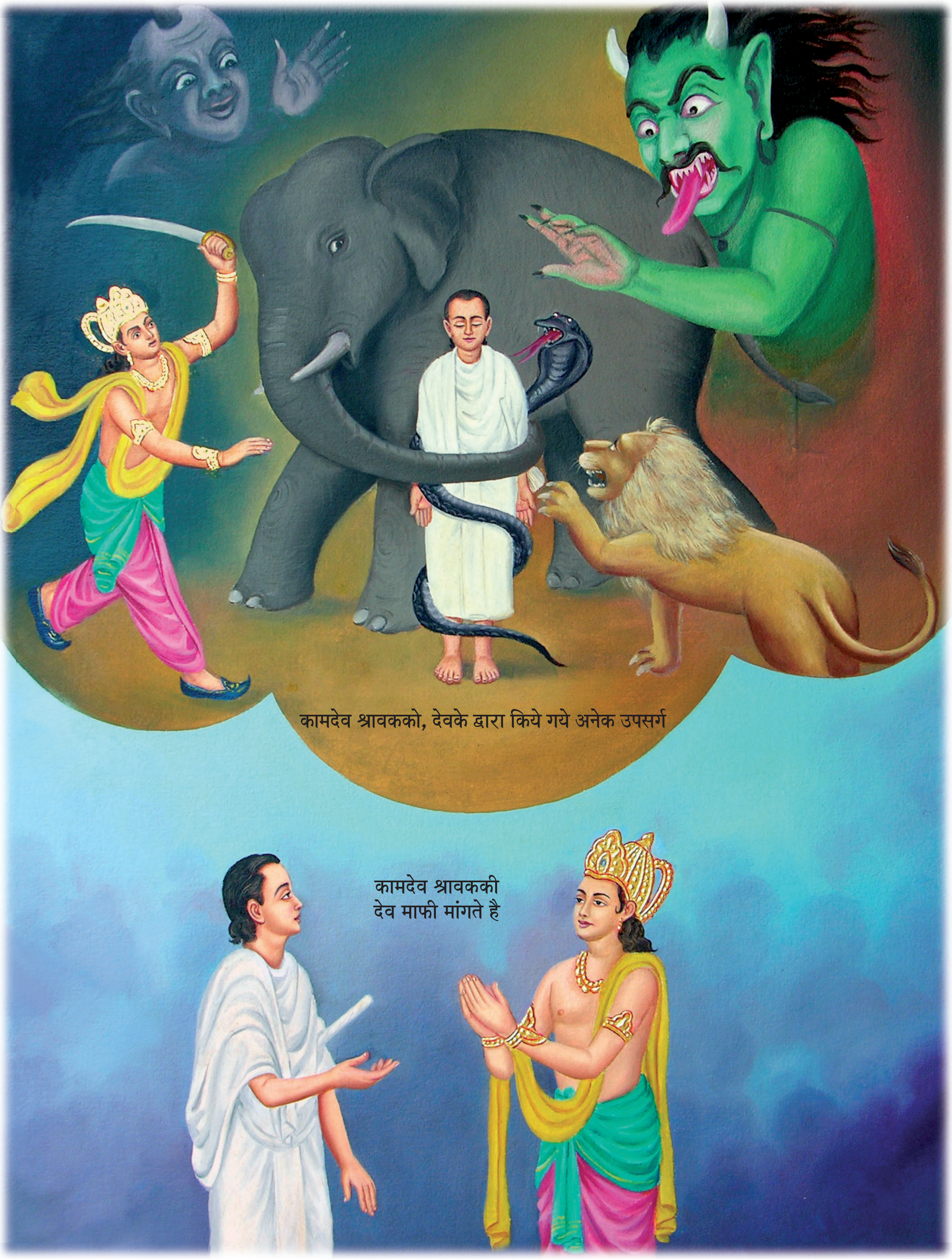

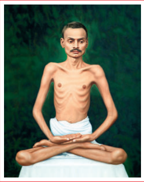

दृढता कहाँसे रखें ? और रखें तो कैसी रखें ?' यह विचारते हुए खेद हो

————

शिक्षापाठ २३ : सत्य

सामान्य कथनमें भी कहा जाता है कि सत्य इस 'सृष्टिका आधार' है; अथवा सत्यके आधार पर यह 'सृष्टि टिकी है।' इस कथनसे यह शिक्षा मिलती है कि धर्म, नीति, राज और व्यवहार ये सब सत्य द्वारा चल रहे हैं; और ये चार न हों तो जगतका रूप कैसा भयंकर हो ? इसलिए सत्य [3]"सृष्टिका आधार' है, यह कहना कुछ अतिशयोक्ति जैसा या न मानने योग्य नहीं है।

वसुराजाका एक शब्दका असत्य बोलना कितना दुःख-दायक हुआ था, 'उसे तत्त्वविचार करनेके लिए मैं यहाँ कहता हूँ।'

वसुराजाका दृष्टांत

वसुराजा, नारद और पर्वत ये तीनों एक गुरुके पास विद्या पढे थे। पर्वत अध्यापकका पुत्र था। अध्यापक चल बसा। इसलिए पर्वत अपनी माँके साथ वसुराजाके राजमें आकर रहा था। एक रात उसकी माँ पासमें बैठी थी, और पर्वत तथा नारद शास्त्राभ्यास कर रहे थे। इस दौरानमें पर्वतने 'अजैर्यष्टव्यम्' ऐसा एक वाक्य कहा। तब नारदने कहा, "अजका अर्थ क्या है, पर्वत ?" पर्वतने कहा, "अज अर्थात् बकरा।" नारद बोला, "हम तीनों जब तेरे पिताके पास पढते थे तब तेरे पिताने तो 'अज' का अर्थ तीन वर्षके 'व्रीहि' बताया था; और तू उलटा अर्थ क्यों करता है ?" इस प्रकार परस्पर वचन-विवाद बढा। तब पर्वतने कहा, "वसुराजा हमें जो कहें वह सही।" यह बात नारदने भी मान ली और जो जीते उसके लिए अमुक शर्त की। पर्वतकी माँ जो पासमें बैठी थी उसने यह सब सुना। 'अज' अर्थात् 'व्रीहि' ऐसा उसे भी याद था। शर्तमें अपना पुत्र हार जायेगा इस भयसे पर्वतकी माँ रातको राजाके पास गयी और पूछा, "राजन् ! 'अज' का क्या अर्थ है ?" वसुराजाने संबंधपूर्वक कहा, "अज का अर्थ 'व्रीहि' है।" तब पर्वतकी माँने राजासे कहा, "मेरे पुत्रने अजका अर्थ बकरा कह दिया है, इसलिए आपको उसका पक्ष लेना पडेगा। आपसे पूछनेके लिए वे आयेंगे।" वसुराजा बोला, "मैं असत्य कैसे कहूँ ? मुझसे यह नहीं हो सकेगा।" पर्वतकी माताने कहा, "परंतु यदि आप मेरे पुत्रका पक्ष नहीं लेंगे, तो मैं आपको हत्याका पाप दूँगी।" राजा विचारमें पड गया—"सत्यके कारण मैं मणिमय सिंहासन पर अधरमें बैठता हूँ। लोकसमुदायका न्याय करता हूँ। लोग भी यह जानते हैं कि राजा सत्य गुणके कारण सिंहासन पर अंतरिक्षमें बैठता है। अब क्या करूँ ? यदि पर्वतका पक्ष न लूँ तो ब्राह्मणी मरती है, और यह तो मेरे गुरुकी स्त्री है।" लाचार होकर अंतमें राजाने ब्राह्मणीसे कहा, "आप खुशीसे जाइये। मैं पर्वतका पक्ष लूँगा।" ऐसा निश्चय कराकर पर्वतकी माता घर आयी। प्रभातमें नारद, पर्वत और उसकी माता विवाद करते हुए राजाके पास आये। राजा अनजान होकर पूछने लगा—"पर्वत, क्या है ?" पर्वतने कहा, "राजाधिराज ! अजका अर्थ क्या है ? यह बताइये।" राजाने नारदसे पूछा—"आप क्या कहते है ?" नारदने कहा—" 'अज'

वसुराजा

नारद और पर्वतका संवाद
१
पर्वतकी माता राजा वसुके पास
२
वसुराजाने पर्वतका पक्ष लिया
३
राजा असत्य वचन बोला,
देवोंने उठाकर फेंका,
मरकर दुर्गतिमें गया
४

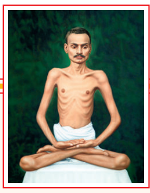

अर्थात् तीन वर्षके 'व्रीहि', आपको कहाँ याद नहीं है ?" वसुराजाने कहा—"अजका अर्थ है बकरा, व्रीहि नहीं।" उसी समय देवताने उसे सिंहासनसे उछालकर नीचे पटक दिया; वसु कालपरिणामको प्राप्त हुआ।

इसपरसे यह मुख्य बोध मिलता है कि [1]"हम सबको सत्य और राजाको सत्य एवं न्याय दोनों ग्रहण करने योग्य हैं।'

भगवानने जो पाँच महाव्रत प्रणीत किये हैं, उनमेंसे प्रथम महाव्रतकी रक्षाके लिए शेष चार व्रत बाडरूप हैं; और उनमें भी पहली बाड सत्य महाव्रत है। इस सत्यके अनेक भेदोंको सिद्धांतसे श्रवण करना आवश्यक है।

शिक्षापाठ २५ : परिग्रहको मर्यादित करना

जिस प्राणीको परिग्रहकी मर्यादा नहीं है, वह प्राणी सुखी नहीं है। उसे जो मिला वह कम है; क्योंकि उसे जितना मिलता जाये उतनेसे विशेष प्राप्त करनेकी उसकी इच्छा होती है। परिग्रहकी प्रबलतामें जो कुछ मिला हो उसका सुख तो भोगा नहीं जाता, परंतु जो होता है वह भी कदाचित् चला जाता है। परिग्रहसे निरंतर चलविचल परिणाम और पापभावना रहती है; अकस्मात् योगसे ऐसी पापभावनामें यदि आयु पूर्ण हो जाये तो बहुधा अधोगतिका कारण हो जाता है। संपूर्ण परिग्रह तो मुनीश्वर त्याग सकते हैं; परंतु गृहस्थ उसकी अमुक मर्यादा कर सकते हैं। मर्यादा हो जानेसे उससे अधिक परिग्रहकी उत्पत्ति नहीं है; और इसके कारण विशेष भावना भी बहुधा नहीं होती; और फिर जो मिला है उसमें संतोष रखनेकी प्रथा पडती है, जिससे सुखमें समय बीतता है। न जाने लक्ष्मी आदिमें कैसी विचित्रता है कि ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है त्यों-त्यों लोभ बढता जाता है। धर्मसंबंधी कितना ही ज्ञान होने पर, धर्मकी दृढता होने पर भी परिग्रहके पाशमें पडा हुआ पुरुष कोई विरल ही छूट सकता है; वृत्ति इसीमें लटकी रहती है; परंतु यह वृत्ति किसी कालमें सुखदायक या आत्महितैषी नहीं हुई है। जिन्होंने इसकी मर्यादा कम नहीं की वे बहुत दुःखके भोगी हुए हैं।

सुभुम चक्रवर्तीका दृष्टांत

छः खंडोंको जीतकर आज्ञा मनानेवाले राजाधिराज चक्रवर्ती कहलाते है। इन समर्थ चक्रवर्तियोंमें सुभूम नामक एक चक्रवर्ती हो गया है। उसने छः खंड जीत लिये इसलिए वह चक्रवर्ती माना गया; परंतु इतनेसे उसकी मनोवांछा तृप्त न हुई, अभी वह प्यासा रहा। इसलिए धातकी खंडके छः खंड जीतनेका उसने निश्चय किया। "सभी चक्रवर्ती छः खंड जीतते हैं; और मैं भी इतने ही जीतूँ, इसमें महत्ता कौनसी ? बारह खंड जीतनेसे मैं चिरकाल तक नामांकित रहूँगा, और उन खंडोंपर जीवनपर्यंत समर्थ आज्ञा चला सकूँगा।" इस विचारसे उसने समुद्रमें चर्मरत्न छोडा, उसपर सर्व सैन्यादिका आधार था। चर्मरत्नके एक हजार देवता सेवक कहे जाते हैं; उनमेंसे प्रथम एकने विचार किया कि न जाने कितने ही वर्षोंमें इससे छुटकारा होगा ? इसलिये देवांगनासे तो मिल आऊँ, ऐसा सोचकर वह चला गया; फिर दूसरा गया; तीसरा गया; और यों

सुभुम चक्रवर्ती

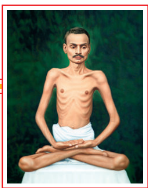

करते-करते हजारके हजार देवता चले गये। तब चर्मरत्न डूब गया; अश्व, गज और सर्व सैन्यसहित सुभूम नामका वह चक्रवर्ती भी डूब गया। पापभावनामें और पापभावनामें मरकर वह अनंत दुःखसे भरे हुए सातवें तमतमप्रभा नरकमें जाकर पडा। देखो ! छः खंडका आधिपत्य तो भोगना एक ओर रहा; परंतु अकस्मात् और भयंकर रीतिसे परिग्रहकी प्रीतिसे इस चक्रवर्तीकी मृत्यु हुई, तो फिर दूसरेके लिये तो कहना ही क्या ? परिग्रह पापका मूल है; पापका पिता है; अन्य एकादश व्रतको महादूषित कर दे ऐसा इसका स्वभाव है। इसलिये आत्महितैषीको यथासंभव इसका त्याग करके मर्यादापूर्वक आचरण करना चाहिये।

शिक्षापाठ २९ : सर्व जीवोंकी रक्षा—भाग १

दया जैसा एक भी धर्म नहीं है। दया ही धर्मका स्वरूप है। जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म नहीं। जगतीतलमें ऐसे अनर्थकारक धर्ममत विद्यमान हैं जो, जीवका हनन करनेमें लेश भी पाप नहीं होता, बहुत तो मनुष्यदेहकी रक्षा करो, ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त ये धर्ममतवाले जनूनी और मदांध हैं, और दयाका लेश स्वरूप भी नहीं जानते। यदि ये लोग अपने हृदयपटको प्रकाशमें रखकर विचार करें तो उन्हें अवश्य मालूम होगा कि एक सूक्ष्मसे सूक्ष्म जंतुके हननमें भी महापाप है। जैसा मुझे अपना आत्मा प्रिय है, वैसा उसे भी अपना आत्मा प्रिय है। मैं अपने थोडेसे व्यसनके लिये या लाभके लिये ऐसे असंख्यात जीवोंका बेधडक हनन करता हूँ, यह मुझे कितने अधिक अनंत दुःखका कारण होगा ? उनमें बुद्धिका बीज भी न होनेसे वे ऐसा विचार नहीं कर सकते। वे दिन-रात पाप ही पापमें मग्न रहते हैं। वेद और वैष्णव आदि पंथोंमें भी सूक्ष्म दयासंबंधी कोई विचार देखनेमें नहीं आता, तो भी ये दयाको सर्वथा न समझनेवालोंकी अपेक्षा बहुत उत्तम हैं। स्थूल जीवोंकी रक्षा करनेमें ये ठीक समझे हैं; परंतु इन सबकी अपेक्षा हम कैसे भाग्यशाली हैं कि जहाँ एक पुष्पपंखडीको भी पीडा हो वहाँ पाप है, इस यथार्थ तत्त्वको समझे हैं और यज्ञ-यागादिकी हिंसासे तो सर्वथा विरक्त रहे हैं। जहाँ तक हो सके वहाँ तक जीवोंको बचाते हैं; फिर भी जानबूझकर जीवहिंसा करनेकी हमारी लेशमात्र इच्छा नहीं है। अनंतकाय अभक्ष्यसे प्रायः हम विरक्त ही हैं। इस कालमें यह समस्त पुण्यप्रताप सिद्धार्थ भूपालके पुत्र महावीरके कहे हुए परम तत्त्वबोधके योगबलसे बढा है। मनुष्य ऋद्धि पाते हैं, सुन्दर स्त्री पाते हैं, आज्ञाकारी पुत्र पाते हैं, बडा कुटुंब-परिवार पाते हैं, मानप्रतिष्ठा और अधिकार पाते हैं, और यह सब पाना कुछ दुर्लभ नहीं है; परंतु यथार्थ धर्मतत्त्व या उसकी श्रद्धा या उसका थोडा अंश भी पाना महादुर्लभ है। यह ऋद्धि इत्यादि अविवेकसे पापका कारण होकर अनंत दुःखमें ले जाती है; परंतु यह थोडी श्रद्धाभावना भी उत्तम पदवीपर पहुँचाती है। ऐसा दयाका सत्परिणाम है। हमने धर्मतत्त्वयुक्त कुलमें जन्म पाया है, तो अब यथासंभव हमें विमल दयामय वर्तनको अपनाना चाहिये। वारंवार यह ध्यानमें रखना चाहिये कि सब जीवोंकी रक्षा करनी है। दूसरोंको भी युक्ति-प्रयुक्तिसे ऐसा

श्रीमद् राजचंद्र

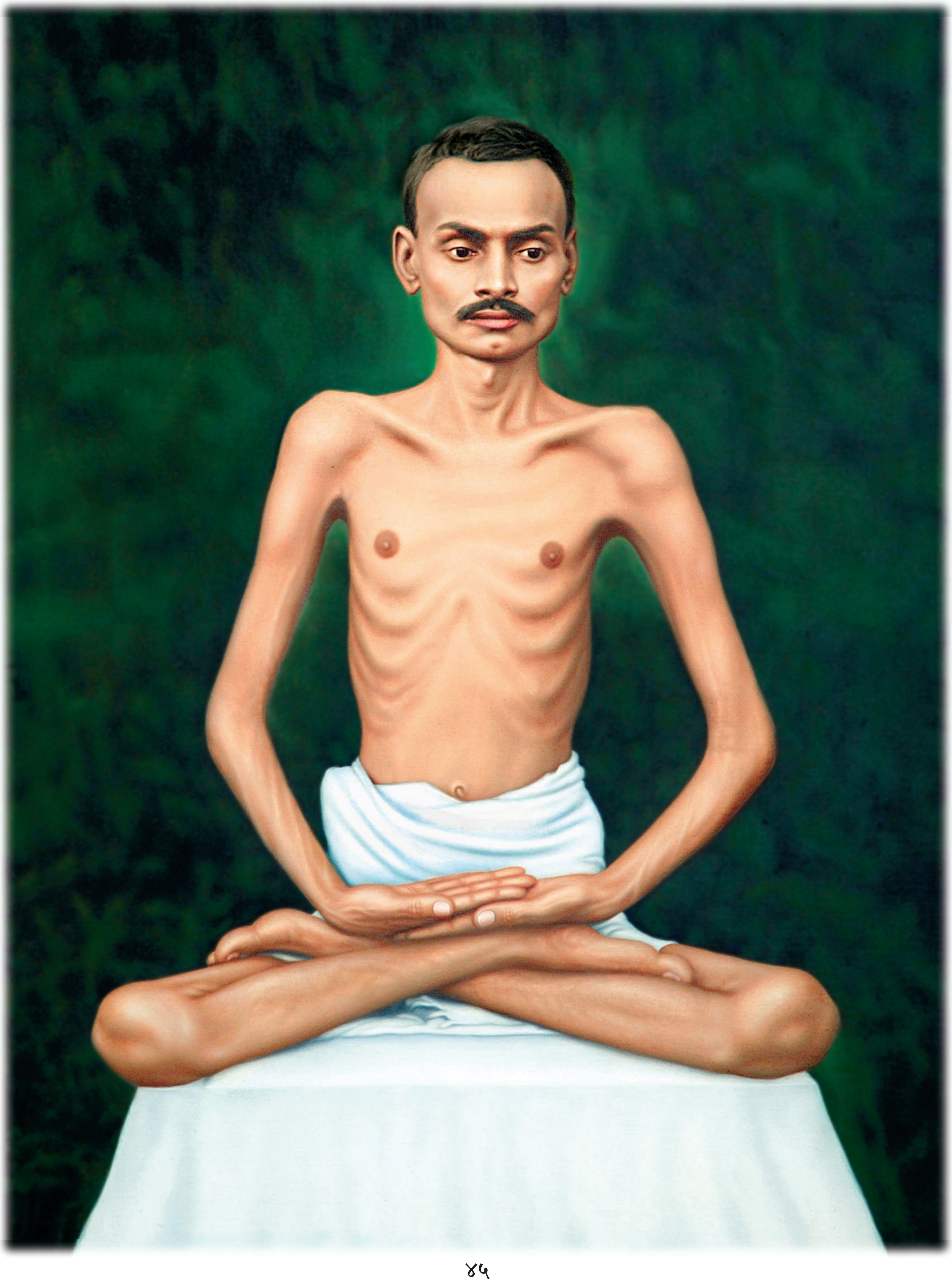

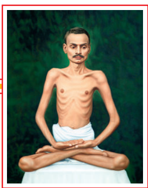

ही बोध देना चाहिये। सर्व जीवोंकी रक्षा करनेके लिये एक बोधदायक उत्तम युक्ति बुद्धिशाली अभयकुमारने की थी उसे मैं अगले पाठमें कहता हूँ। इसी प्रकार तत्त्वबोधके लिये यौक्तिक न्यायसे अनार्य जैसे धर्ममतवादियोंको शिक्षा देनेका अवसर मिले तो हम कैसे भाग्यशाली!

शिक्षापाठ ३० : सर्व जीवोंकी रक्षा—भाग २

अभयकुमारकी युक्ति

मगध देशकी राजगृही नगरीका अधिराज श्रेणिक एक बार सभा भरकर बैठा था। प्रसंगोपात्त बातचीतके दौरान जो मांसलुब्ध सामंत थे वे बोले कि आजकल मांस विशेष सस्ता है। यह बात अभयकुमारने सुनी। इसलिये उसने उन हिंसक सामंतोंको बोध देनेका निश्चय किया। सायं सभा विसर्जित हुई; राजा अंतःपुरमें गया। उसके बाद अभयकुमार कर्तव्यके लिये जिस-जिसने मांसकी बात कही थी उस-उसके घर गया। जिसके घर गया वहाँ स्वागत करनेके बाद उसने पूछा—"आप किसलिये परिश्रम उठा कर मेरे घर पधारे हैं?" अभयकुमारने कहा—"महाराजा श्रेणिकको अकस्मात् महारोग उत्पन्न हुआ है। वैद्योंको इकट्ठे करनेपर उन्होंने कहा कि कोमल मनुष्यके कलेजेका सवा टंकभर मांस हो तो यह रोग मिटे। आप राजाके प्रियमान्य हैं, इसलिये आपके यहाँ यह मांस लेने आया हूँ।" सामंतने विचार किया—"कलेजेका मांस मैं मरे बिना किस तरह दे सकता हूँ?" इसलिये अभयकुमारसे पूछा— "महाराज, यह तो कैसे हो सकता हैं?" ऐसा कहनेके बाद अपनी बात राजाके आगे प्रगट न करनेके लिये अभय-कुमारको बहुतसा द्रव्य 'दिया जिसे वह' अभयकुमार लेता गया। इस प्रकार अभयकुमार सभी सामंतोंके घर फिर आया। सभी मांस न दे सके और अपनी बातको छुपानेके लिये उन्होंने द्रव्य दिया। फिर जब दूसरे दिन सभा मिली तब सभी सामंत अपने-अपने आसनपर आकर बैठे। राजा भी सिंहासनपर विराजमान था। सामंत आ-आकर राजासे कलकी कुशल पूछने लगे। राजा इस बातसे विस्मित हुआ। अभयकुमारकी ओर देखा। तब अभयकुमार बोला—"महाराज! कल आपके सामंत सभामें बोले थे कि आजकल मांस सस्ता मिलता है, इसलिये मैं उनके यहाँ मांस लेने गया था; तब सबने मुझे बहुत द्रव्य दिया; परंतु कलेजेका सवा पैसा भर मांस नहीं दिया। तब यह मांस सस्ता या महँगा?" यह सुनकर सब सामंत शरमसे नीचे देखने लगे; कोई कुछ बोल न सका। फिर अभयकुमारने कहा—"यह मैंने कुछ आपको दुःख देनेके लिये नहीं किया परंतु बोध देनेके लिये किया है। यदि हमें अपने शरीरका मांस देना पडे तो अनंत भय होता है, क्योंकि हमें अपनी देह प्रिय है। इसी प्रकार जिस जीवका वह मांस होगा उसे भी अपना जीव प्यारा होगा। जैसे हम अमूल्य वस्तुएँ देकर भी अपनी देहको बचाते हैं वैसे ही उन बिचारे पामर प्राणियोंको भी होना चाहिये। हम समझवाले बोलते-चालते प्राणी हैं, वे बिचारे अवाचक और नासमझ हैं। उन्हें मौतका दुःख दें यह कैसा पापका प्रबल कारण है? हमें इस वचनको निरंतर

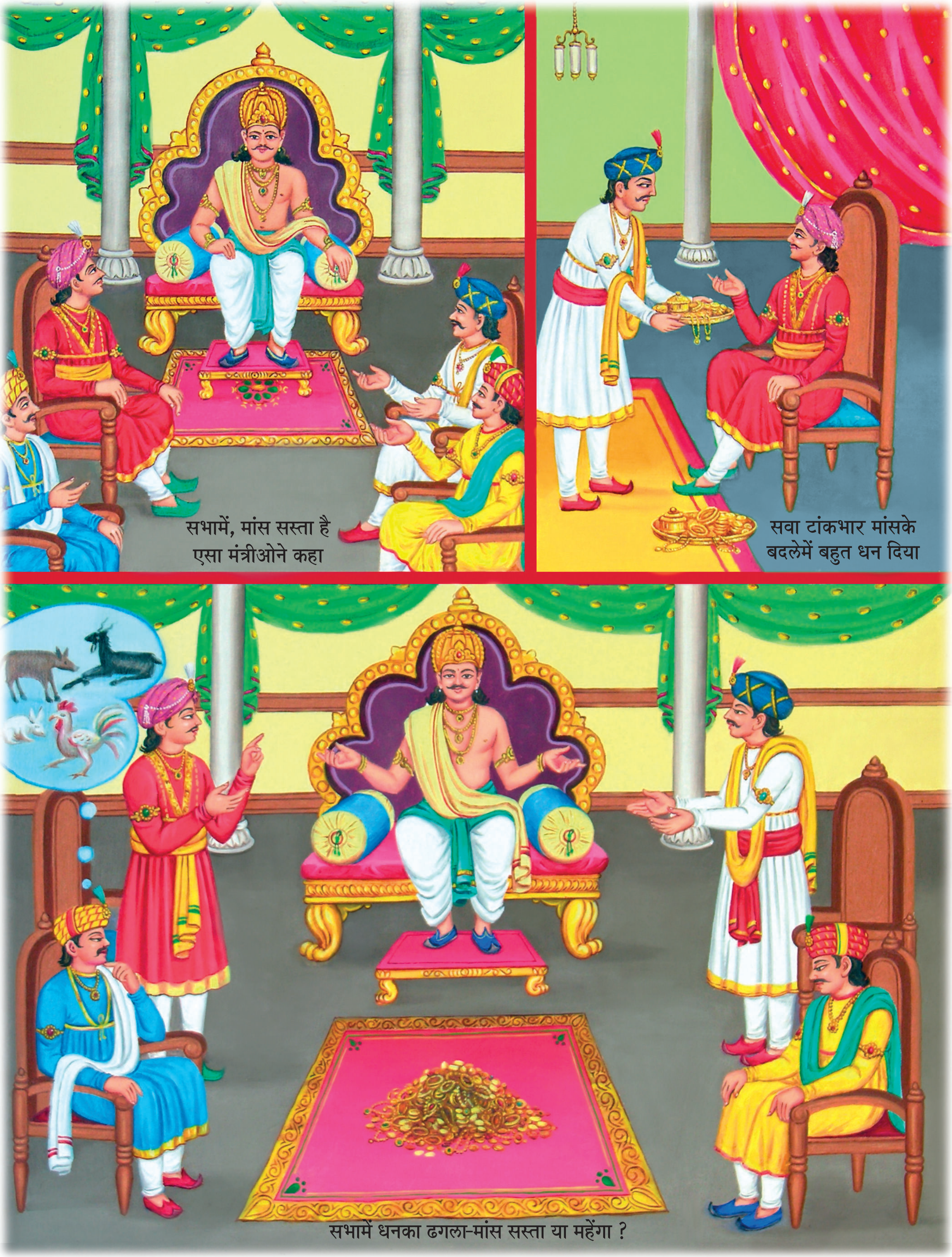
सभामें, मांस सस्ता है
एसा मंत्रीओने कहा
सवा टांकभार मांसके
बदलेमें बहुत धन दिया
सभामें धनका ढगला-मांस सस्ता या महेंगा ?

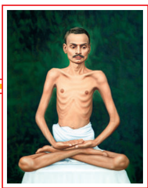

ध्यानमें रखना चाहिये कि सब प्राणियोंको अपना जीव प्यारा है; और सब जीवोंकी रक्षा करना इसके जैसा एक भी धर्म नहीं है।'' अभयकुमारके भाषणसे श्रेणिक महाराजा संतुष्ट हुए, सभी सामंत भी प्रतिबुद्ध हुए। उन्होंने उस दिनसे मांस न खानेकी प्रतिज्ञा की; क्योंकि एक तो यह अभक्ष्य है, और किसी जीवको मारे बिना मिलता नहीं है, यह बडा अधर्म है। इसलिये अभय मंत्रीका कथन सुनकर उन्होंने अभयदानमें ध्यान दिया, जो आत्माके परम सुखका कारण है।

शिक्षापाठ ३२ : विनयसे तत्त्वकी सिद्धि है।

श्रेणिक राजाका दृष्टांत

राजगृही नगरीके राज्यासनपर जब श्रेणिक राजा बिराजमान था तब उस नगरीमें एक चांडाल रहता था। एक बार उस चांडालकी स्त्रीको गर्भ रहा तब उसे आम खानेकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने आम ला देनेके लिये चांडालसे कहा। चांडालने कहा, ''यह आमका मौसम नहीं है, इसलिये मैं निरुपाय हूँ; नहीं तो मैं आम चाहे जितने ऊँचे स्थानपर हों वहाँसे अपनी विद्याके बलसे लाकर तेरी इच्छा पूर्ण करूँ।'' चांडालीने कहा, ''राजाकी महारानीके बागमें एक असमयमें आम देनेवाला आम्रवृक्ष है, उसपर अभी आम लचक रहे होंगे, इसलिये वहाँ जाकर आम ले आओ।'' अपनी स्त्रीकी इच्छा पूरी करनेके लिये चांडाल उस बागमें गया। गुप्तरूपसे आम्रवृक्षके पास जाकर मन्त्र पढकर उसे झुकाया और आम तोड लिये। दूसरे मंत्रसे उसे जैसाका तैसा कर दिया। बादमें वह घर आया और अपनी स्त्रीकी इच्छापूर्तिके लिये निरंतर वह चांडाल विद्याके बलसे वहाँसे आम लाने लगा। एक दिन फिरते-फिरते मालीकी दृष्टि आम्रवृक्षकी ओर गयी। आमोंकी चोरी हुई देखकर उसने जाकर श्रेणिक राजाके सामने नम्रतापूर्वक कहा। श्रेणिककी आज्ञासे अभयकुमार नामके बुद्धिशाली मंत्रीने युक्तिसे उस चांडालको खोज निकाला। चांडालको अपने सामने बुलाकर पूछा, ''इतने सारे मनुष्य बागमें रहते हैं, फिर भी तू किस तरह चढकर आम ले गया कि यह बात किसीके भाँपनेमें भी न आयी ? सो कह।'' चांडालने कहा, ''आप मेरा अपराध क्षमा करे। मैं सच कह देता हूँ कि मेरे पास एक विद्या है, उसके प्रभावसे मैं उन आमोंको ले सका।'' अभयकुमारने कहा, ''मुझसे तो क्षमा नहीं दी जा सकती; परंतु महाराजा श्रेणिकको तू यह विद्या दे तो उन्हें ऐसी विद्या लेनेकी अभिलाषा होनेसे तेरे उपकारके बदलेमें मैं अपराध क्षमा करा सकता हूँ।'' चांडालने वैसा करना स्वीकार किया। फिर अभयकुमारने चांडालको जहाँ श्रेणिक राजा सिंहासनपर बैठा था वहाँ लाकर सामने खडा रखा; और सारी बात राजाको कह सुनायी। इस बातको राजाने स्वीकार किया। फिर चांडाल सामने खडे रहकर थरथराते पैरोंसे श्रेणिकको उस विद्याका बोध देने लगा; परंतु वह बोध लगा नहीं। तुरन्त खडे होकर अभयकुमार बोले, ''महाराज! आपको यदि यह विद्या अवश्य सीखनी हो तो सामने आकर खडे रहें, और इसे सिंहासन दें।'' राजाने विद्या लेनेके लिये वैसा किया तो तत्काल विद्या सिद्ध हो गयी।

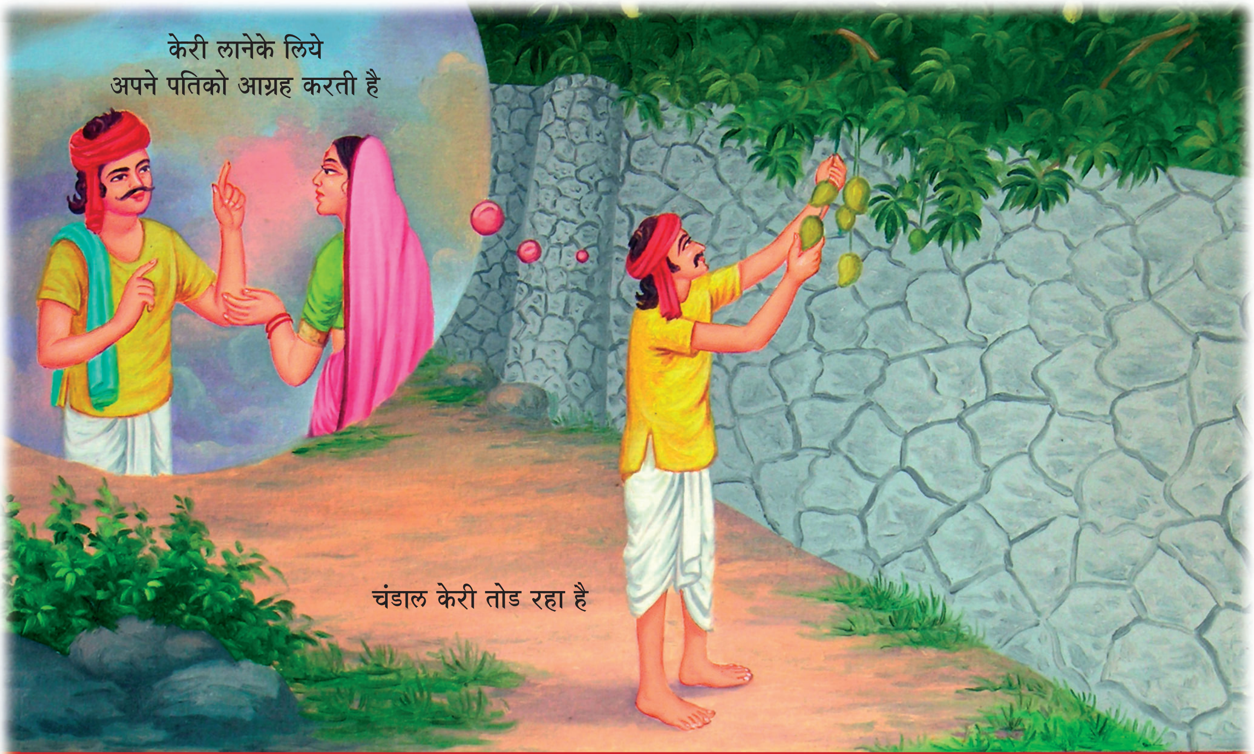
केरी लानेके लिये
अपने पतिको आग्रह करती है
चंडाल केरी तोड रहा है

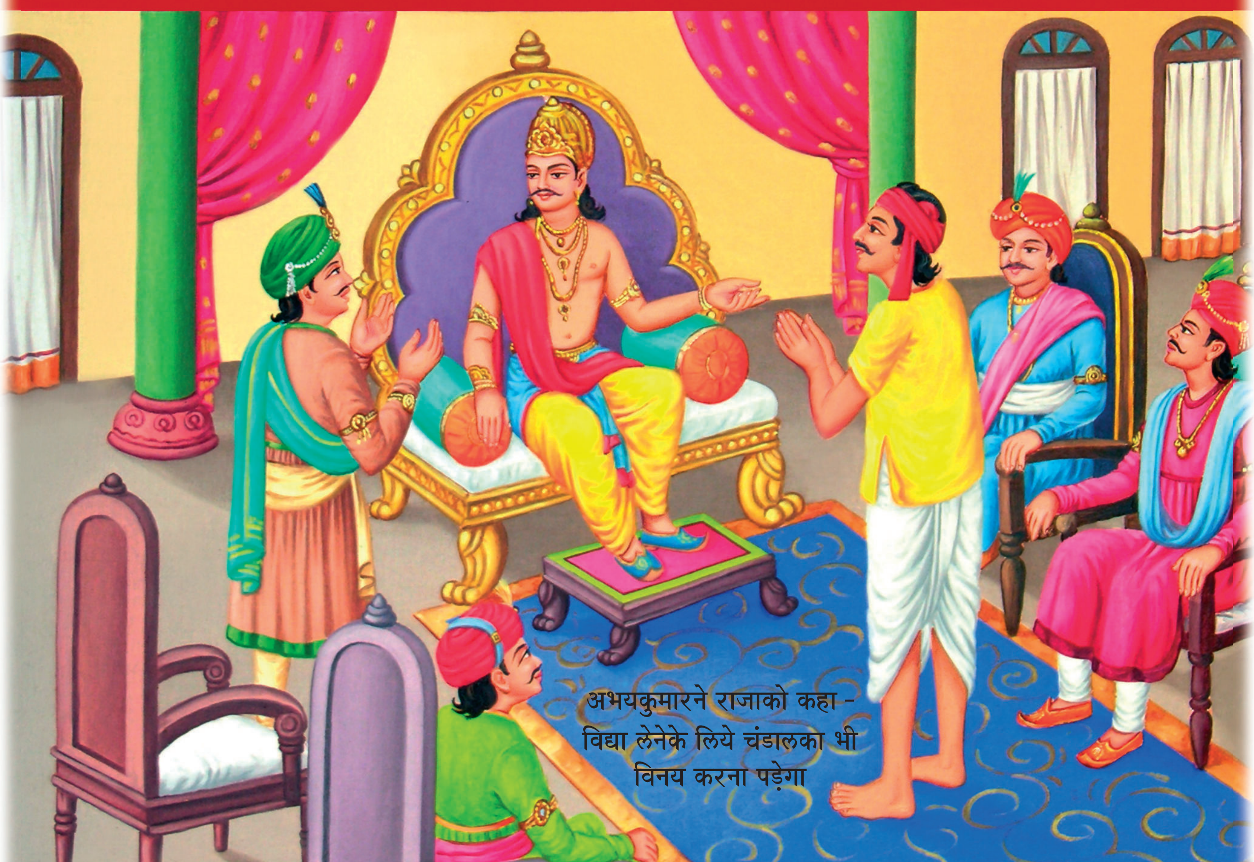
अभयकुमारने राजाको कहा -
विद्या लेनेके लिये चंडालका भी
विनय करना पड़ेगा

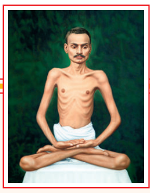

यह बात केवल बोध लेनेके लिये है। एक चांडालकी भी विनय किये बिना श्रेणिक जैसे राजाको विद्या सिद्ध न हुई, तो इसमेंसे यह तत्त्व ग्रहण करना है कि, सद्विद्याको सिद्ध करनेके लिये विनय करनी चाहिये। आत्मविद्या पानेके लिये यदि हम निर्ग्रंथ गुरुकी विनय करें तो कैसा मंगलदायक हो!

विनय यह उत्तम वशीकरण है। भगवानने उत्तराध्ययनमें विनयको धर्मका मूल कहकर वर्णित किया है। गुरुकी, मुनिकी, विद्वानकी, माता-पिताकी, और अपनेसे बडोंकी विनय करनी यह अपनी उत्तमताका कारण है।

शिक्षापाठ ३३ : सुदर्शन सेठ

प्राचीन कालमें शुद्ध एकपत्नीव्रतको पालनेवाले असंख्य पुरुष हो गये हैं; उनमेंसे संकट सहन करके प्रसिद्ध होनेवाला सुदर्शन नामका एक सत्पुरुष भी है। वह धनाढ्य, सुन्दर मुखाकृतिवाला, कांतिमान् और युवावस्थामें था। जिस नगरमें वह रहता था, उस नगरके राजदरबारके सामनेसे किसी कार्य-प्रसंगके कारण उसे निकलना पडा। वह जब वहाँसे निकला तब राजाकी अभया नामकी रानी अपने आवासके झरोखेमें बैठी थी। वहाँसे सुदर्शनकी ओर उसकी दृष्टि गयी। उसका उत्तम रूप और काया देखकर उसका मन ललचाया। एक अनुचरीको भेजकर कपटभावसे निर्मल कारण बताकर सुदर्शनको ऊपर बुलाया। अनेक प्रकारकी बातचीत करनेके बाद अभयाने सुदर्शनको भोग भोगनेका आमंत्रण दिया। सुदर्शनने बहुत-सा उपदेश दिया तो भी उसका मन शांत नहीं हुआ। आखिर तंग आकर सुदर्शनने युक्तिसे कहा, "बहिन! मैं पुरुषत्वहीन हूँ!" तो भी रानीने अनेक प्रकारके हावभाव किये। परंतु उन सारी कामचेष्टाओंसे सुदर्शन विचलित नहीं हुआ; इससे तंग आकर रानीने उसे जाने दिया।

एक बार उस नगरमें उत्सव था, इसलिये नगरके बाहर नगरजन आनंदसे इधर-उधर घूमते थे। धूमधाम मची हुई थी। सुदर्शन सेठके छः देवकुमार जैसे पुत्र भी वहाँ आये थे। अभया रानी कपिला नामकी दासीके साथ ठाठबाटसे वहाँ आयी थी। सुदर्शनके देवपुतले जैसे छः पुत्र उसके देखनेमें आये। उसने कपिलासे पूछा, "ऐसे रम्य पुत्र किसके हैं?" कपिलाने सुदर्शन सेठका नाम लिया। यह नाम सुनते ही रानीकी छातीमें मानो कटार भोंकी गयी, उसे घातक चोट लगी। सारी धूमधाम बीत जानेके बाद माया-कथन गढकर अभया और उसकी दासीने मिलकर राजासे कहा—"आप मानते होंगे कि मेरे राज्यमें न्याय और नीतिका प्रवर्तन है, दुर्जनोंसे मेरी प्रजा दुःखी नहीं है; परंतु यह सब मिथ्या है। अंतःपुरमें भी दुर्जन प्रवेश करें यहाँ तक अभी अंधेर है! तो फिर दूसरे स्थानोंके लिये तो पूछना ही क्या? आपके नगरके सुदर्शन नामके सेठने मुझे भोगका आमंत्रण दिया; न कहने योग्य कथन मुझे सुनने पडे; परंतु मैंने उसका तिरस्कार किया। इससे विशेष अंधेर कौनसा कहा जाय!" राजा मूलतः कानके कच्चे होते हैं, यह बात तो यद्यपि सर्वमान्य ही है, उसमें फिर स्त्रीके मायावी मधुर वचन क्या असर नहीं करेंगे? तत्ते तेलमें ठंडे

सुदर्शन शेठ

१
अभया रानी सुदर्शन शेठको समझा रही है
२
कपिलाने कहा-यह छहो पुत्र सुदर्शन शेठके
३
रानी सुदर्शन शेठके बारेमें
राजाके कानमें उल्टी बात करती हुई
४
शेठको शूलीकी शिक्षा,
शूली फटकर सिंहासन

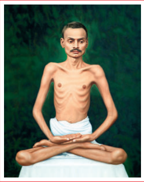

जल जैसे वचनोंसे राजा क्रोधायमान हुआ। उसने सुदर्शनको शूलीपर चढा देनेकी तत्काल आज्ञा कर दी, और तदनुसार सब कुछ हो भी गया। मात्र सुदर्शनके शूली पर चढनेकी देर थी।

चाहे जो हो परंतु 'सृष्टिके' दिव्य भंडारमें उजाला है। सत्यका प्रभाव ढका नहीं रहता। सुदर्शनको शूलीपर बिठाया कि शूली मिट कर जगमगाता हुआ सोनेका सिंहासन हो गया, और देवदुंदुभिका नाद हुआ, सर्वत्र आनंद छा गया। सुदर्शनका सत्य शील विश्वमंडलमें झलक उठा। सत्य शीलकी सदा जय है। शील और सुदर्शनकी उत्तम दृढता ये दोनों आत्माको पवित्र श्रेणिपर चढाते है!

शिक्षापाठ ४३ : अनुपम क्षमा

क्षमा अंतर्शत्रुको जीतनेका खड्ग है। पवित्र आचारकी रक्षा करनेका बख्तर है। शुद्धभावसे असह्य दुःखमें सम-परिणामसे क्षमा रखनेवाला मनुष्य भवसागरको तर जाता है।

गजसुकुमारका दृष्टांत

कृष्ण वासुदेवके गजसुकुमार नामके छोटे भाई महा सुरूपवान एवं सुकुमार मात्र बारह वर्षकी आयुमें भगवान नेमिनाथके पास संसारत्यागी होकर स्मशानमें उग्रध्यानमें स्थित थे; तब वे एक अद्भुत क्षमामय चरित्रसे महा सिद्धिको पा गये, उसे मैं यहाँ कहता हूँ।

सोमल नामके ब्राह्मणकी सुरूपवर्णसंपन्न पुत्रीके साथ गजसुकुमारकी सगाई हुई थी। परंतु विवाह होनेसे पहले गजसुकुमार तो संसार त्याग कर चले गये। इसलिये अपनी पुत्रीके सुखनाशके द्वेषसे उस सोमल ब्राह्मणको भयंकर क्रोध व्याप्त हो गया। गजसुकुमारकी खोज करता करता वह उस स्मशानमें आ पहुँचा जहाँ महा मुनि गजसुकुमार एकाग्र विशुद्ध भावसे कायोत्सर्गमें थे। उसने कोमल गजसुकुमारके माथेपर चिकनी मिट्टीकी बाड बनाई और उसके अंदर धधकते हुए अंगारे भरे और ईंधन भरा जिससे महा ताप उत्पन्न हुआ। इससे गजसुकुमारकी कोमल देह जलने लगी तब सोमल वहाँसे जाता रहा। उस समय गजसुकुमारके असह्य दुःखके बारेमें भला क्या कहा जाये? परंतु तब वे समभाव परिणाममें रहे। किंचित् क्रोध या द्वेष उनके हृदयमें उत्पन्न नहीं हुआ। अपने आत्माको स्वरूपस्थित करके बोध दिया, "देख! यदि तूने इसकी पुत्रीके साथ विवाह किया होता तो यह कन्यादानमें तुझे पगडी देता। वह पगडी थोडे समयमें फट जानेवाली तथा परिणाममें दुःखदायक होती। यह इसका बडा उपकार हुआ कि उस पगडीके बदले इसने मोक्षकी पगडी बँधवायी।" ऐसे विशुद्ध परिणामोंसे अडिग रहकर समभावसे उस असह्य वेदनाको सहकर, सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर वे अनंत जीवनसुखको प्राप्त हुए। कैसी अनुपम क्षमा और कैसा उसका सुन्दर परिणाम! तत्त्वज्ञानियोंके वचन हैं कि आत्मा मात्र स्वसद्भावमें आना चाहिये, और वह उसमें आया तो मोक्ष हथेलीमें ही है। गजसुकुमारकी प्रसिद्ध क्षमा कैसा विशुद्ध बोध देती है!

गजसुकुमारके सिर पर मिट्टीकी पाली करके अग्नि जलाता हुआ सोमल ब्राह्मण

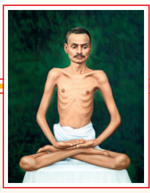

शिक्षापाठ ४६ : कपिलमुनि–भाग १

कौशाम्बी नामकी एक नगरी थी। वहाँके राजदरबारमें राज्यके आभूषणरूप काश्यप नामका एक शास्त्री रहता था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीदेवी था। उसके पेटसे कपिल नामका एक पुत्र जन्मा था। जब वह पन्द्रह वर्षका हुआ तब उसके पिताका स्वर्गवास हो गया। कपिल लाडप्यारमें पला होनेसे विशेष विद्वत्ताको प्राप्त नहीं हुआ था, इसलिये उसके पिताका स्थान किसी दूसरे विद्वानको मिला। काश्यप शास्त्री जो पूँजी कमाकर गये थे, उसे कमानेमें अशक्त कपिलने खाकर पूरी कर दी। एक दिन श्रीदेवी घरके दरवाजेमें खडी थी कि इतनेमें दो-चार नौकरोंसहित अपने पतिकी शास्त्रीय पदवीको प्राप्त विद्वान जाता हुआ उसके देखनेमें आया। बहुत मानसे जाते हुए उस शास्त्रीको देखकर श्रीदेवीको अपनी पूर्वस्थितिका स्मरण हो आया। "जब मेरे पति इस पदवीपर थे, तब मैं कैसा सुख भोगती थी! यह मेरा सुख तो गया, परंतु मेरा पुत्र भी पूरा पढा ही नहीं।" इस प्रकार विचारमें डोलते-डोलते उसकी आँखोंमेंसे टपाटप आँसू गिरने लगे। इतनेमें घूमता घूमता कपिल वहाँ आ पहुँचा। श्रीदेवीको रोती हुई देखकर उसका कारण पूछा। कपिलके बहुत आग्रहसे श्रीदेवीने जो था वह कह बताया। फिर कपिल बोला, "देख माँ, मैं बुद्धिशाली हूँ, परंतु मेरी बुद्धिका उपयोग जैसा चाहिये वैसा नहीं हो सका। इसलिये विद्याके बिना मैंने यह पदवी प्राप्त नहीं की। तू जहाँ कहे वहाँ जाकर अब मैं यथाशक्ति विद्या सिद्ध करूँ।" श्रीदेवीने खेदपूर्वक कहा, "यह तुझसे नहीं हो सकेगा, नहीं तो आर्यावर्तकी सीमापर स्थित श्रावस्ती नगरीमें इन्द्रदत्त नामका तेरे पिताका मित्र रहता है, वह अनेक विद्यार्थियोंको विद्यादान देता है; यदि तू वहाँ जा सके तो अभीष्ट सिद्धि अवश्य होगी।" एक-दो दिन रुक कर सज्ज होकर, 'अस्तु' कह कर कपिलजीने रास्ता पकडा।

अवधि बीतनेपर कपिल श्रावस्तीमें शास्त्रीजीके घर आ पहुँचा। प्रणाम करके अपना इतिहास कह सुनाया। शास्त्रीजीने मित्रपुत्रको विद्यादान देनेके लिये बहुत आनंद प्रदर्शित किया। परंतु कपिलके पास कोई पूँजी न थी कि उसमेंसे वह खाये और अभ्यास कर सके; इसलिये उसे नगरमें भिक्षा माँगनेके लिये जाना पडता था। माँगते माँगते दोपहर हो जाती थी, फिर रसोई बनाता और खाता कि इतनेमें संध्याका थोडा समय रहता था; इसलिये वह कुछ भी अभ्यास नहीं कर सकता था। पंडितजीने उसका कारण पूछा तो कपिलने सब कह सुनाया। पंडितजी उसे एक गृहस्थके पास ले गये और उस गृहस्थने कपिलपर अनुकंपा करके एक विधवा ब्राह्मणीके घर ऐसी व्यवस्था कर दी कि उसे हमेशा भोजन मिलता रहे, जिससे कपिलकी यह एक चिंता कम हुई।

शिक्षापाठ ४७ : कपिलमुनि–भाग २

यह छोटी चिंता कम हुई, वहाँ दूसरी बडी झंझट खडी हुई। भद्रिक कपिल अब जवान हो गया था; और जिसके यहाँ वह खाने जाता था वह विधवा स्त्री भी जवान थी। उसके साथ उसके घरमें दूसरा कोई आदमी नहीं था। दिन प्रतिदिन पारस्परिक बातचीतका संबंध बढा; बढकर

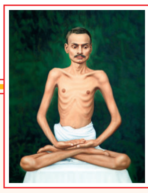

हास्य-विनोदरूपमें परिणत हुआ; यों होते होते दोनों प्रेमपाशमें बँध गये। कपिल उससे लुभाया! एकांत बहुत अनिष्ट वस्तु है!!

वह विद्या प्राप्त करना भूल गया। गृहस्थकी ओरसे मिलनेवाले सीधेसे दोनोंका मुश्किलसे निर्वाह होता था; परंतु कपडे-लत्तेकी तकलीफ हुई। कपिलने गृहस्थाश्रम बसा लेने जैसा कर डाला। चाहे जैसा होनेपर भी लघुकर्मी जीव होनेसे उसे संसारके प्रपंचकी विशेष जानकारी भी नहीं थी। इसलिये वह बेचारा यह जानता भी न था कि पैसा कैसे पैदा किया जाय। चंचल स्त्रीने उसे रास्ता बताया कि व्याकुल होनेसे कुछ नहीं होगा; परंतु उपायसे सिद्धि है। इस गाँवके राजाका ऐसा नियम है कि सबेरे पहले जाकर जो ब्राह्मण आशीर्वाद दे उसे वह दो माशा सोना देता है। वहाँ यदि जा सको और प्रथम आशीर्वाद दे सको तो वह दो माशा सोना मिलेगा। कपिलने यह बात मान ली। आठ दिन तक धक्के खाये परंतु समय बीत जानेके बाद पहुँचनेसे कुछ हाथ नहीं आता था। इसलिये उसने एक दिन निश्चय किया कि यदि मैं चौकमें सोऊँ तो सावधानी रखकर उठा जायगा। फिर वह चौकमें सोया। आधी रात बीतनेपर चंद्रका उदय हुआ। कपिल प्रभात समीप समझकर मुट्ठियाँ बाँधकर आशीर्वाद देनेके लिये दौडते हुए जाने लगा। रक्षपालने उसे चोर जानकर पकड लिया। लेनेके देने पड गये। प्रभात होने पर रक्षपालने उसे ले जाकर राजाके समक्ष खडा किया। कपिल बेसुध-सा खडा रहा; राजाको उसमें चोरके लक्षण दिखाई नहीं दिये। इसलिये उससे सारा वृत्तांत पूछा। चंद्रके प्रकाशको सूर्यके समान माननेवालेकी भद्रिकतापर राजाको दया आयी। उसकी दरिद्रता दूर करनेकी राजाकी इच्छा हुई, इसलिये कपिलसे कहा, "आशीर्वाद देनेके लिये यदि तुझे इतनी झंझट खडी हो गई है तो अब तू यथेष्ट माँग ले; मैं तुझे दूँगा।" कपिल थोडी देर मूढ जैसा रहा। इससे राजाने कहा, "क्यों विप्र! कुछ माँगते नहीं हो?" कपिलने उत्तर दिया, "मेरा मन अभी स्थिर नहीं हुआ है; इसलिये क्या माँगूँ यह नहीं सूझता।" राजाने सामनेके बागमें जाकर वहाँ बैठकर स्वस्थतापूर्वक विचार करके कपिलको माँगनेके लिये कहा। इसलिये कपिल उस बागमें जाकर विचार करने बैठा।

शिक्षापाठ ४८ : कपिलमुनि—भाग ३

दो माशा सोना लेनेकी जिसकी इच्छा थी, वह कपिल अब तृष्णातरंगमें बहने लगा। पाँच मुहरें माँगनेकी इच्छा की, तो वहाँ विचार आया कि पाँचसे कुछ पूरा होनेवाला नहीं है। इसलिये पच्चीस मुहरे माँगूँ। यह विचार भी बदला। पच्चीस मुहरोंसे कहीं सारा वर्ष नहीं निकलेगा; इसलिये सौ मुहरें माँग लूँ। वहाँ फिर विचार बदला। सौ मुहरोंसे दो वर्ष कट जायेंगे, वैभव भोगकर फिर दुःखका दुःख, इसलिये एक हजार मुहरोंकी याचना करना ठीक है; परंतु एक हजार मुहरोंसे, बाल-बच्चोंके दो चार खर्च आ जाय, या ऐसा कुछ हो तो पूरा भी क्या हों? इसलिये दस हजार मुहरें माँग लूँ कि जिससे जीवनपर्यन्त भी चिन्ता न रहे। वहाँ फिर इच्छा बदली। दस हजार मुहरें खत्म हो जायेगी तो फिर पूँजीहीन होकर रहना पडेगा। इसलिये एक लाख मुहरोंकी माँग करूँ कि जिसके ब्याजमें सारा वैभव भोगूँ; परंतु जीव! लक्षाधिपति तो

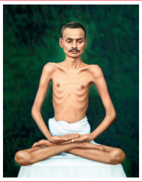

बहुतसे हैं, इनमें मैं नामांकित कहाँसे हो पाऊँगा ? इसलिये करोड मुहरें माँग लूँ कि जिससे मैं महान श्रीमान कहा जाऊँ। फिर रंग बदला। महती श्रीमत्तासे भी घरमें सत्ता नहीं कहलायेगी, इसलिये राजाका आधा राज्य माँगूँ। परंतु यदि आधा राज्य माँगूँगा तो भी राजा मेरे तुल्य गिना जायगा; और फिर मैं उसका याचक भी माना जाऊँगा। इसलिये माँगूँ तो पूरा राज्य ही माँग लूँ। इस तरह वह तृष्णामें डूबा; परंतु वह था तुच्छ संसारी, इसलिये फिरसे पीछे लौटा। भले जीव ! मुझे ऐसी कृतघ्नता किसलिये करनी पडे कि जो मुझे इच्छानुसार देनेको तत्पर हुआ उसीका राज्य ले लेना और उसीको भ्रष्ट करना ? यथार्थ दृष्टिसे तो इसमें मेरी ही भ्रष्टता है। इसलिये आधा राज्य माँगूँ; परन्तु यह उपाधि भी मुझे नहीं चाहिये। तब पैसेकी उपाधि भी कहाँ कम है ? इसलिये करोड, लाख छोडकर सौ दो सौ मुहरें ही माँग लूँ। जीव ! सौ दो सौ मुहरे अभी मिलेगी तो फिर विषय-वैभवमें वक्त चला जायगा; और विद्याभ्यास भी धरा रहेगा; इसलिये अभी तो पाँच मुहरें ही ले जाऊँ, पीछेकी बात पीछे। अरे ! पाँच मुहरोंकी भी अभी कुछ जरूरत नहीं है; मात्र दो माशा सोना लेने आया था वही माँग लूँ। जीव ! यह तो हद हो गई। तृष्णासमुद्रमें तूने बहुत गोते खाये। संपूर्ण राज्य माँगते हुए भी जो तृष्णा नहीं बुझती थी, मात्र संतोष एवं विवेकसे उसे घटाया तो घट गई। यह राजा यदि चक्रवर्ती होता तो फिर मैं इससे विशेष क्या माँग सकता था ? और जब तक विशेष न मिलता तब तक मेरी तृष्णा शांत भी न होती; जब तक तृष्णा शांत न होती तब तक मैं सुखी भी न होता। इतनेसे भी मेरी तृष्णा दूर न हो तो फिर दो माशेसे कहाँसे दूर होगी ? उसका आत्मा सुलटे भावमें आया और वह बोला, "अब मुझे दो माशे सोनेका भी कुछ काम नहीं; दो माशेसे बढकर मैं किस हद तक पहुँचा ! सुख तो संतोषमें ही है। यह तृष्णा संसारवृक्षका बीज है। इसकी हे जीव ! तुझे क्या आवश्यकता है ? विद्या ग्रहण करते हुए तू विषयमें पड गया; विषयमें पडनेसे इस उपाधिमें पडा; उपाधिके कारण तू अनंत तृष्णासमुद्रकी तरंगोंमें पडा। इस प्रकार एक उपाधिसे इस संसारमें अनंत उपाधियाँ सहनी पडती हैं। इसलिये इसका त्याग करना उचित है। सत्य संतोष जैसा निरुपाधि सुख एक भी नहीं है।" यों विचार करते करते तृष्णाको शान्त करनेसे उस कपिलके अनेक आवरण क्षय हो गये। उसका अंतःकरण प्रफुल्लित और बहुत विवेकशील हो गया। विवेक ही विवेकमें उत्तम ज्ञानसे वह स्वात्माका विचार कर सका। अपूर्व श्रेणिपर चढकर वह केवलज्ञानको प्राप्त हुआ ऐसा कहा जाता है।

तृष्णा कैसी कनिष्ठ वस्तु है ! ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि तृष्णा आकाश जैसी अनंत है। निरंतर वह नवयौवना रहती है। कुछ चाह जितना मिला कि वह चाहको बढा देती है। संतोष ही कल्पवृक्ष है; और यही मात्र मनोवांछाको पूर्ण करता है।

विधवाने कपिलको राजाके पाससे
दो मासा सोना लानेकी प्रेरणा दी
मध्यरात्रिमें राजाके पास
जाते हुए कपिलको
सैनिकोने पकडा
तृष्णाके त्यागसें
कपिल केवली बन गया
राजाके सामने
बात करता हुआ
भद्रिक कपिल
बगीचेमें विचार करता हुआ कपिल

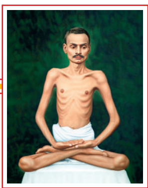

शिक्षापाठ ७३ : मोक्षसुख

इस सृष्टिमंडलमें भी कितनी ही ऐसी वस्तुएँ और मनकी इच्छाएँ रही हैं कि जिन्हें कुछ अंशमें जानते हुए भी कहा नहीं जा सकता। फिर भी ये वस्तुएँ कुछ सम्पूर्ण शाश्वत या अनंत भेदवाली नहीं है। ऐसी वस्तुका जब वर्णन नहीं हो सकता तब अनन्त सुखमय मोक्षसम्बन्धी उपमा तो कहाँसे मिलेगी ? गौतम स्वामीने भगवानसे मोक्षके अनन्त सुखके विषयमें प्रश्न किया तब भगवानने उत्तरमें कहा—"गौतम ! यह अनंतसुख ! मैं जानता हूँ, परन्तु उसे कहा जा सके ऐसी यहाँ पर कोई उपमा नहीं है। जगतमें इस सुखके तुल्य कोई भी वस्तु या सुख नहीं है।" ऐसा कहकर उन्होंने निम्न आशयका एक भीलका दृष्टांत दिया था।

भद्रिक भीलका दृष्टांत

एक जंगलमें एक भद्रिक भील अपने बालबच्चों सहित रहता था। शहर आदिकी समृद्धिकी उपाधिका उसे लेश भान भी न था। एक दिन कोई राजा अश्वक्रीडाके लिये घूमता घूमता वहाँ आ निकला। उसे बहुत प्यास लगी थी, जिससे उसने इशारेसे भीलसे पानी माँगा। भीलने पानी दिया। शीतल जलसे राजा संतुष्ट हुआ। अपनेको भीलकी तरफसे मिले हुए अमूल्य जलदानका बदला चुकानेके लिये राजाने भीलको समझा कर अपने साथ लिया। नगरमें आनेके बाद राजाने भीलको उसने जिन्दगीमें न देखी हुई वस्तुओंमें रखा। सुन्दर महल, पासमें अनेक अनुचर, मनोहर छत्रपलंग, स्वादिष्ट भोजन, मंद-मंद पवन और सुगन्धी विलेपनसे उसे आनन्दमय कर दिया। विविध प्रकारके हीरा, माणिक, मौक्तिक, मणिरत्न और रंग-बिरंगी अमूल्य वस्तुएँ निरन्तर उस भीलको देखनेके लिये भेजा करता था, और उसे बाग-बगीचोंमें घूमने-फिरनेके लिये भेजा करता था। इस प्रकार राजा उसे सुख दिया करता था। एक रात जब सब सो रहे थे तब उस भीलको बालबच्चे याद आये, इसलिये वह वहाँसे कुछ लिये किये बिना एकाएक निकल पडा। जाकर अपने कुटुम्बियोंसे मिला। उन सबने मिलकर पूछा, "तू कहाँ था ?" भीलने कहा, "बहुत सुखमें। वहाँ मैंने बहुत प्रशंसा करने योग्य वस्तुएँ देखीं।"

कुटुम्बी—परंतु वे कैसी थीं ? यह तो हमें बता।

भील—क्या कहूँ ? यहाँ वैसी एक भी वस्तु नहीं है।

कुटुम्बी—भला ऐसा हो क्या ? ये शंख, सीप, कौडा कैसे मनोहर पडे हैं ! वहाँ ऐसी कोई देखने लायक वस्तु थी ?

भील—नहीं, नहीं भाई, ऐसी वस्तु तो यहाँ एक भी नहीं है। उनके सौवें या हजारवें भाग जितनी भी मनोहर वस्तु यहाँ नहीं है।

कुटुम्बी—तब तो तू चुपचाप बैठा रह, तुझे भ्रम हुआ है, भला, इससे अच्छा और क्या होगा ?

हे गौतम ! जैसे यह भील राजवैभवसुख भोगकर आया थी, और जानता भी था, फिर भी उपमायोग्य वस्तु न मिलनेसे वह कुछ कह नहीं सकता था; वैसे ही अनुपमेय मोक्षको, सच्चिदानन्द स्वरूपमय निर्विकारी मोक्षके सुखके असंख्यातवें भागके भी योग्य उपमेय न मिलनेसे मैं तुझे नहीं कह सकता।

भद्रिक भील

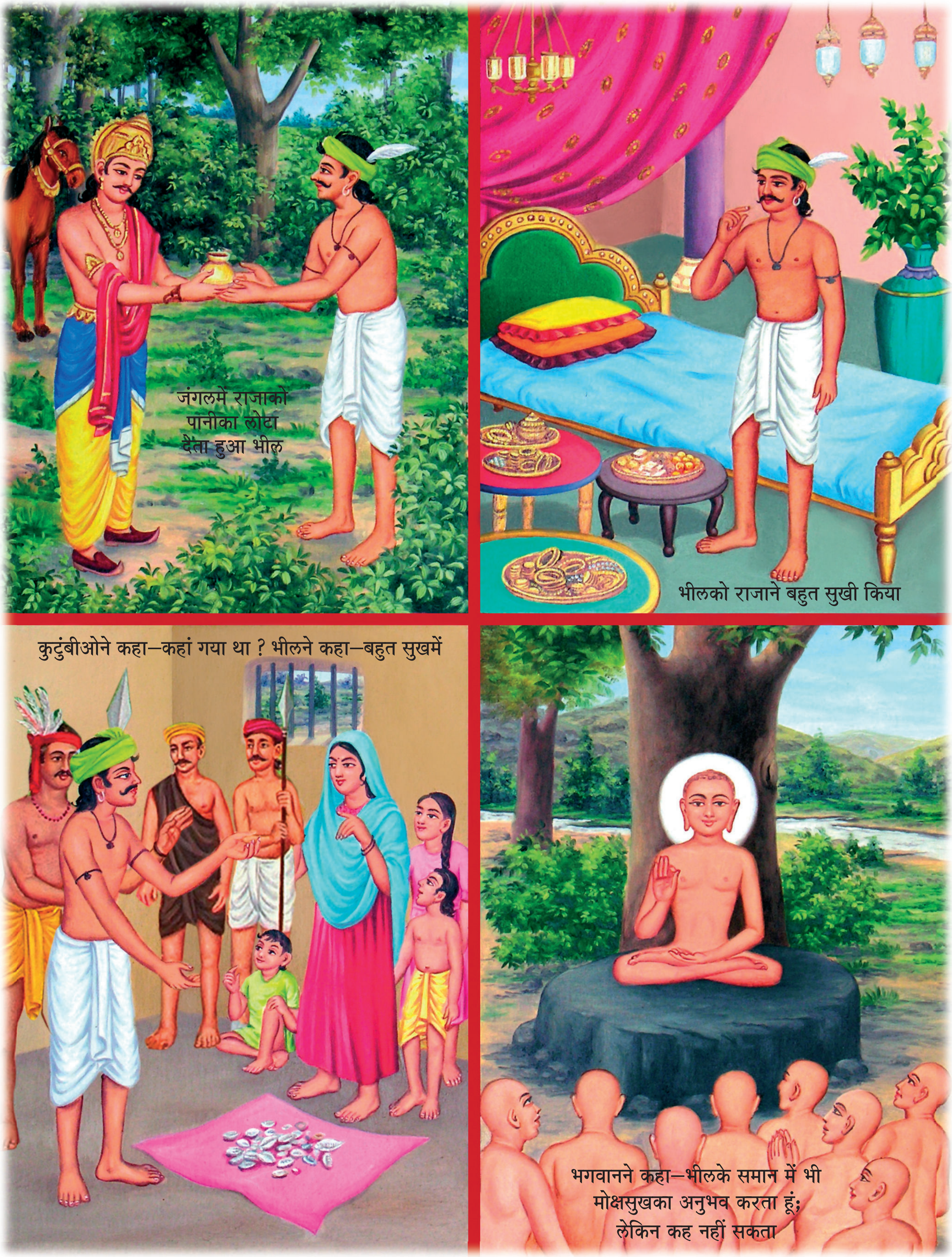
जंगलमें राजाको
पानीका लोटा
देता हुआ भील
भीलको राजाने बहुत सुखी किया
कुटुंबीओने कहा—कहां गया था ? भीलने कहा—बहुत सुखमें
भगवानने कहा—भीलके समान में भी
मोक्षसुखका अनुभव करता हूं;
लेकिन कह नहीं सकता

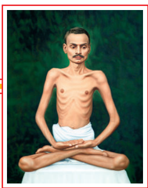

मोक्षके स्वरूपके विषयमें शंका करनेवाले तो कुतर्कवादी हैं, उन्हें क्षणिक सुखसंबंधी विचारके कारण सत्सुखका विचार नहीं आता। कोई आत्मिकज्ञानहीन यों भी कहता है कि इससे कोई विशेष सुखका साधन वहाँ है नहीं, इसलिये अनंत अव्याबाध सुख कह देते हैं। उसका यह कथन विवेकपूर्ण नहीं है। निद्रा प्रत्येक मानवको प्रिय है; परन्तु उसमें वह कुछ जान या देख नहीं सकता; और यदि कुछ जाननेमें आये तो मात्र स्वप्नोपाधिका मिथ्यापना आता है जिसका कुछ असर भी हो। वह स्वप्नरहित निद्रा जिसमें सूक्ष्म एवं स्थूल सब जाना और देखा जा सके, और निरुपाधिसे शांत ऊँघ ली जा सके तो उसका वह वर्णन क्या कर सकता है? उसे उपमा भी क्या दे सकता है? यह तो स्थूल दृष्टांत है; परन्तु बाल, अविवेकी इस परसे कुछ विचार कर सके, इसलिये कहा है।

भीलका दृष्टांत, समझानेके लिये भाषाभेदके फेरफारसे तुम्हें कह बताया।

(भावनाबोध - मोक्षमाला समाप्त)

नीचे लिखे हुए प्रश्नोका विचार कीजिए

अनित्य भावना - भिखारी का खेद (पृष्ठ १)

१. एक भिखारी एक गृहस्थ के घर पर क्यों गया? २. भिखारी को आनंद किसलिये हुआ? ३. झाड़के नीचे क्यों बैठा? उसके पास क्या क्या चीजें थी? ४. स्वप्नमें उसने क्या क्या देखा? और किस कारण से जाग उठा? जागने पर खेद क्यों हुआ?

अशरण भावना - अनाथी मुनि (पृष्ठ ४)

१. जंगल का क्या नाम था? वह जंगल कैसा सुंदर था? २. झाड़के नीचे कौन बैठा था? ३. राजा मुनिको देखकर क्या सोचता है? और क्या करके उनके सामने बैठा? ४. राजा मुनिको क्या कहता है? मुनिने क्या जवाब दिया? ५. अनाथता किसे कहते है? मुनिके पिताका नाम क्या था? ६. उनको कौनसी वेदना उत्पन्न हुई? मातापिताने वेदनाको दूर करने के क्या उपाय किये? ८. अनाथपना कैसे कहा जाएगा? ९. क्या विचार करके सोये थे? १०. स्वयं और दूसरो के नाथ कैसे हुए? ११. नरकमें ले जानेवाला कौन ? और स्वर्गमें ले जानेवाला कौन? १२. अनाथी मुनिके उपदेशसें राजा को क्या प्राप्त हुआ? १३. अनाथी मुनि के प्रति राजा क्या कहते है?

एकत्व भावना - नमिराजर्षि (पृष्ठ ८)

१. नमिराजर्षिको कौनसी वेदना उत्पन्न हुई? २. वैद्यने कौनसी दवाई बताई? राणीया क्या घिसने बैठी? ३. आवाज़ किसका हुआ? आवाज़ शांत होने पर नमिराजर्षिने क्या विचार किया? ४. वैराग्य आनेसे किसकी स्मृति हुई? ६. क्या विचार करके सो गये?

अन्यत्व भावना -राजाधिराज भरतेश्वर (पृष्ठ १४)

१. अंगूलीमेंसे क्या निकल पड़ा? अंगूली अशोभनीय किस कारणसे हुई? २. दश अंगूलियोंमें

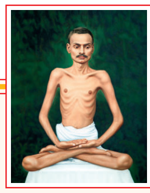

से क्या निकाल दिया ? ३. अंगूली किससे सुंदर दिखती है ? ४. अंगूलीसे क्या शोभा देता है ? और हाथसें क्या शोभा देता है ? ५. शरीर किससे शोभा देता है ? ६. भरतराजाके हृदयमें क्या उत्पन्न हुआ ? ७. वैराग्य होनेसे क्या निकल गया ? ८. शुक्ल ध्यानसे क्या उत्पन्न हुआ ? ९. केवलज्ञान होने पर क्या किया ?

अशुचिभावना - सनत्कुमार चक्रवर्ती (पृष्ठ १९)

१. दो देव कौनसा रूप लेकर के, कहाँ पर आये ? २. उस वक्त सनत्कुमारके शरीर पर क्या लगा हुआ था ? ३. विप्रोने किस रूपमें मस्तक घूमाया ? ४. देवोने रूपकी प्रशंसा की उससे क्या हुआ ? ५. राजसभामें देवोने किस रूपमें मस्तक घूमाया ? ६. ब्राह्मणोने क्या कहा ? ७. पान थूकने से क्या हुआ ? ८. कायाको झेरमय जानकर सनत्कुमारने क्या किया ? ९. सनत्कुमारको वैराग्य आने पर क्या किया ? १०. दीक्षाके बाद कितने रोग उत्पन्न हुए ? देव परीक्षा करने आये तब सनत्कुमारने क्या कहा ?

निवृत्तिबोध (संसारभावना) - मृगापुत्र (पृष्ठ २२)

१. मृगापुत्र झरोखेमेंसे क्या देख रहे है ? २. राजमार्ग पर कौन खड़ा है ? ३. मृगापुत्रने मुनिके निरीक्षणसे क्या प्राप्त किया ? ४. जातिस्मरणज्ञान पानेसे उनको क्या याद आ गया ? ५. संसारके दुःख जानकर, वैराग्य होनेसे क्या भावना हुई ? मातापिताके पास क्या मांगते है ? ७. चारित्र पालनेमें क्या क्या मुश्केली आयेगी ? ८. मृगापुत्रका दृढ निश्चय देखकर मातापिताने किसकी आज्ञा दी ? मृगापुत्रने दीक्षा लेकर क्या प्राप्त किया ?

आस्रव भावना - कुंडरिक (पृष्ठ २९)

१. मुनिराजका उपदेश सुनकर कुंडरिकने क्या किया ? २. संयममें शरीर रोगग्रस्त होनेसे कैसे भाव किये ? ३. अपने नगरमें आकर अशोकवाटिकामें झाड़ पर क्या लटकाया ? ४. पुंडरिकने कुंडरिकको राज्य देकर स्वयंने क्या किया ? ५. कुंडरिकने राज्यमें आकर क्या किया ? ६. रातको उल्टी हो जाने पर कैसे भाव किये ? ७. रातको रौद्रध्यानसे मृत्यु होने पर मरकर कहां गया ?

संवरभावना - पुंडरिक (पृष्ठ ३०)

१. पुंडरिकने कुंडरिककी मुखपटी आदि उपकरणको ग्रहण करके क्या निश्चय किया ? २. पुंडरिक मृत्यु के बाद कहां पर गया ?

संवरभावना - वज्रस्वामी (पृष्ठ ३०)

१. वज्रस्वामीके रूपका वर्णन सुनकर रुक्मिणीने क्या निश्चय किया ? २. धनावह शेठने रुक्मिणी और द्रव्य को लेकर वज्रस्वामीसे क्या कहा ? ३. रुक्मिणीने वज्रस्वामीको पिघलानेके लिये क्या उपाय किये ? ४. अंतमें रुक्मिणीने क्या किया ?

निर्जराभावना - दृढप्रहारी (पृष्ठ ३३)

१. दृढप्रहारीने ब्राह्मणके घर जाकर क्या किया ? २. ब्राह्मणीने उसे क्या कहा ? ३. ब्राह्मणीने

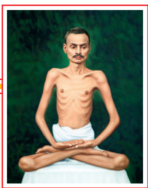

वचन सुनकर दृढप्रहारीने क्या किया ? ४. चार हत्याएं करने के बाद उसे क्या विचार आया ? ५. दीक्षा लेनेके बाद कहाँ पर खड़ा रहा ? समभाव रखनेसे क्या प्राप्त किया ?

लोकस्वरूपभावना (पृष्ठ ३४)

१. लोकका स्वरूप किस प्रकारसे हैं ? उसको जाननेसे हमको क्या फायदा होगा ?

बोधदुर्लभभावना (पृष्ठ ३६)

१. सच्चा ज्ञान किसे कहते है ? २. इस समयमें सच्चा ज्ञान प्राप्त होना क्यों दुर्लभ है ? ३. और जो ज्ञान मिला उसके आधार पर चलनेमें जीवको क्या मुश्किली लगती है ?

धर्मदुर्लभभावना (पृष्ठ ३६)

१. सत्‌धर्मके सच्चे उपदेशक किसको कहना ? २. इस जमानेमें उनका उपदेश मिलना क्यों दुर्लभ हो गया ?

बाहुबल (पृष्ठ ३६)

१. भरत चक्रवर्तीका चक्र आयुधशालामें क्यों प्रवेश नहीं करता है ? २. भरत चक्रवर्तीने क्रोधके आवेशमें आकर बाहुबल पर क्या छोडा ? ३. चक्रने बाहुबलको क्यों मारा नहीं ? ४. बाहुबलने क्रोधमें आकर क्या किया ? ५. मुष्टि उठाने पर तत्काल क्या विचार आया ? ६. उस मुष्टिसे बाहुबलने क्या किया ? ७. ऋषभदेव भगवानके पास जाते समय क्या विचार आया ? ८. जंगलमें कितने समय खड़े रहे ? ९. उनको समझाने के लिये दो बहिनोंको किसने भेजा ? १०. भाईयों को वंदन करनेके लिये पग उठाते ही क्या प्राप्त हुआ ?

कामदेव श्रावक (पृष्ठ ३८)

१. सुधर्मा सभामें इन्द्रने कामदेवकी क्या प्रशंसा की ? २. देवोने आकर कामदेवको क्या किया ? ३. भगवानने मुनिओको कामदेवका दृष्टांत किस लिये दिया ?

वसुराजा (पृष्ठ ४०)

१. पर्वत और नारद शास्त्राभ्यास करते समय पर्वत क्या बोला ? २. नारदने कहा—अजका क्या अर्थ है ? पर्वतने क्या कहा ? ३. पर्वतकी माता रातको किसके पास गइ ? । ४. सुबहमें नारद और पर्वत वसुराजाके पास आये तब वसुराजाने क्या जवाब दिया ? ५. वसुराजाने असत्य बोलने से क्या फल पाया ?

सुभुम चक्रवर्ती (पृष्ठ ४२)

१. सुभुमने छ खंड जीतकर दूसरे कितने खंड जीतनेकी चाहना की ? २. धातकी खंडके छ खंड जीतनेकी किस लिये इच्छा की ? ३. धातकी खंडमें जानेके लिये उसने क्या किया ? ४. चर्मरत्नके कितने देव रक्षा करनेवाले होते है ? ५. उन देवोने क्या विचार किया ? ६. सब देव जाने पर